संस्थापक:
योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

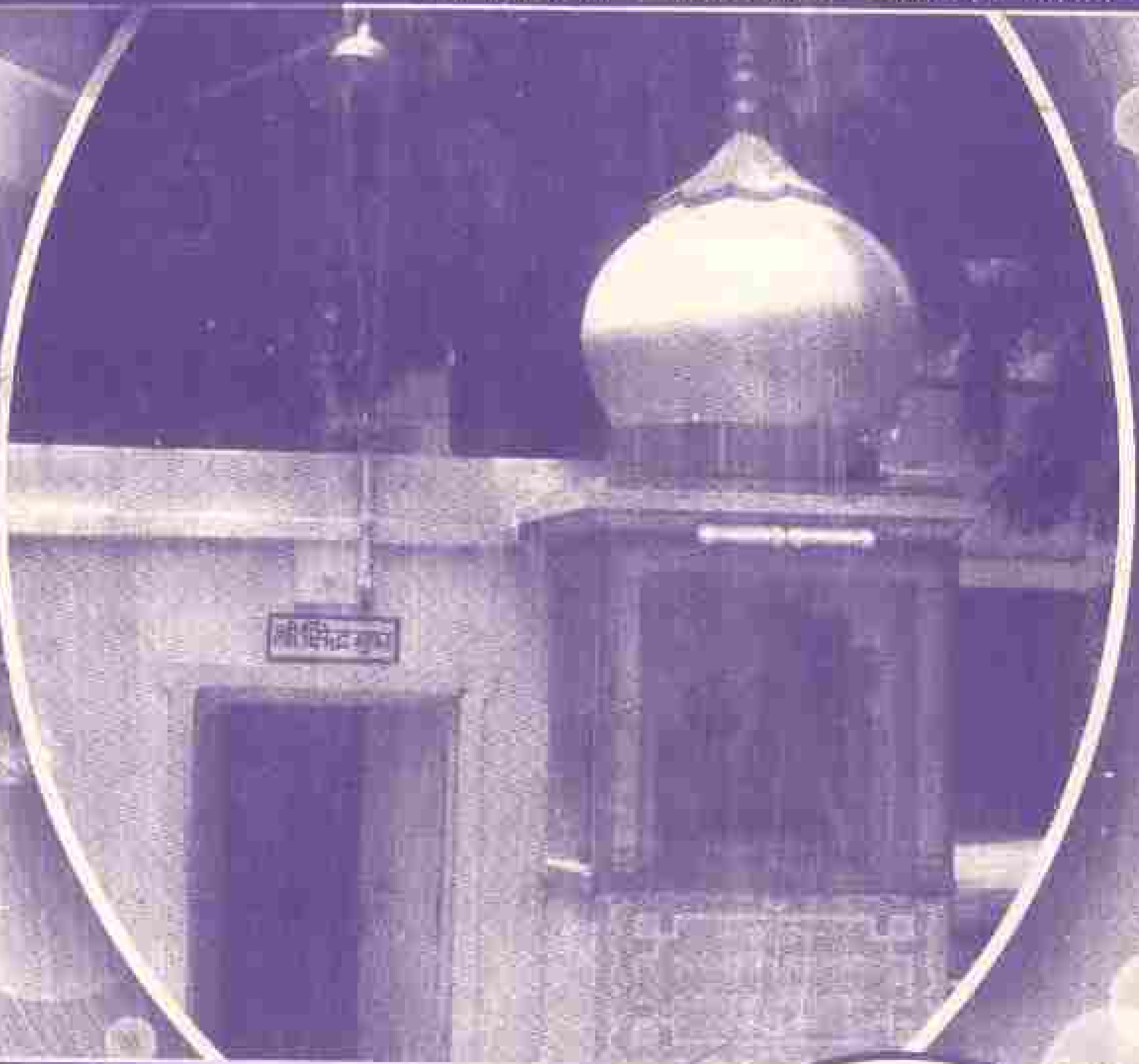

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 38; अंक : 9
दिसम्बर, 2005

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में...

- अमृत कण 2
- ध्यान योग और क्लिष्टाक्लिष्ट वृत्तियाँ (विशेष लेख) 3
- **सम्पादकीय** 8
- **भजन** –जगदीश राय बंसल 'अधम' 10
- मेरे सद्गुरुदेव –विजय सिंह 11
- योगी अमीरानंदजी द्वारा...... –जुगमंदरदास शर्मा 15
- निर्मल प्रेम मुझे दे दो –राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू) 21
- **सामूहिक पूजा में अनुशासन की आवश्यकता** –डॉ० रुद्रदत्त चतुर्वेदी 22
- **साधक में त्रिगुण प्रभाव** –कृष्ण कुमार पाण्डेय (गोरखपुर) 25
- **शरीर और आत्मा** –दृष्टिकेतु सिंह पुण्डीर (अलीगढ़) 27
- पृथ्वी पर पारस 'सद्गुरुदेव' –रचना शर्मा (गंगापुरसिटी) 29
- **श्रीमद्भगवद् गीता का उद्देश्य** –डॉ० जयनारायण 34
- गुरुआज्ञा न उल्लंघनियाँ –केशवदेव उपाध्याय (वाराणसी) 35
- दृढ़ संकल्प से ही लक्ष्य की प्राप्ति –राजेश कुमार सिंह, बलिया 38

एक प्रति	: रु. 09-00
वार्षिक शुल्क	: रु. 100-00
द्विवार्षिक	: रु. 190-00
आजीवन	: रु. 800-00

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 38 अंक 9	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम् मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः। तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्, कल्यानां भवतु तहतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	दिसम्बर 2005

शान्ति पाठ

ॐ आप्यायन्तु ममांगानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोतमथो वलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्या मा मा ब्रह्म निराकरोत्, अनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु, ते मयि सन्तु।

(केनोपनिषद्)

भावार्थ

अर्थात्–हे परमात्मन् ! मेरे सारे अंग, वाणी, नेत्र, श्रोत्र आदि सभी कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ, प्राणसमूह, शारीरिक और मानसिक शक्ति तथा ओज–सब पुष्टि एवं वृद्धि को प्राप्त हों। उपनिषदों में सर्वरूप ब्रह्म का जो स्वरूप वर्णित है, उसे मैं कभी अस्वीकार न करूँ और यह ब्रह्म भी मेरा कभी परित्याग न करे। मुझे सदा अपनाये रखे। मेरे साथ ब्रह्म का और ब्रह्म के साथ मेरा नित्य सम्बन्ध बना रहे। उपनिषदों में जिन धर्मों का प्रतिपादन किया गया है, वे सारे धर्म, उपनिषदों के एक मात्र लक्ष्य परब्रह्म परमात्मा में निरन्तर लगे हुए मुझ साधक में सदा प्रकाशित रहें, मुझ में नित्य निरन्तर बने रहें और मेरे त्रिविध तापों की निवृत्ति हो।

अमृतकण

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि
तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्।।

(मुण्डकोपनिषद् १/१/७)

जिस प्रकार मकड़ी जाले को बनाती है और निगल जाती है तथा जिस प्रकार पृथ्वी में नाना प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न होती हैं और जिस प्रकार जीवित मनुष्य से केश और रोये उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार अविनाशी परब्रह्म से यहाँ इस सृष्टि में सब कुछ उत्पन्न होता है।

✿ ✿ ✿

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य
इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३/२/)

जो अपनी स्वरूपभूत विविध शासन–शक्तियों द्वारा इन सब लोकों पर शासन करता है वह रुद्र एक ही है। इसलिए विद्वान पुरुषों ने जगत् के कारण का निश्चय करते समय दूसरे का आश्रय नहीं लिया, वह परमात्मा समस्त जीवों के भीतर स्थित हो रहा है। सम्पूर्ण लोकों की रचना करके उनकी रक्षा करने वाला परमेश्वर प्रलयकाल में इस सबको समेट लेता है।

✿ ✿ ✿

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं
परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
सहस्त्ररश्मिः शतधा वर्तमानः
प्राणः प्रजानामुदयत्येस सूर्यः।।

(प्रश्नोपनिषद् १/८)

सम्पूर्ण रूपों के केन्द्र, सर्वज्ञ, सर्वाधार, प्रकाशमय, तपते हुए किरणों वाले सूर्य को अद्वितीय बतलाते हैं। सहस्त्रों किरणों वाला सूर्य सैकड़ों प्रकार से वर्तता हुआ समस्त जीवों का प्राण होकर उदय होता है।

✿ ✿ ✿

❒ विशेष लेख

ध्यान योग और क्लिष्टाक्लिष्ट वृत्तियाँ

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

मैंने तुम्हें कई बार समझाया है कि **ध्यानहेयास्तद् वृत्तयः** के नियमानुसार हमारी क्लिष्ट और अक्लिष्ट जितनी भी वृत्तियाँ हैं वह योग ध्यान से ही हटाई जा सकती हैं। क्लिष्टवृत्ति दुःखरूप है संसार की ओर ले जाती है अधर्म एवं तम की ओर ले जाती है। अक्लिष्ट वृत्ति शुभ वृत्ति को कहते हैं। यह ज्ञान एवं वैराग्य की ओर ले जाती है। वृत्तियों के विषय में यह जानना आवश्यक है कि **'क्लिष्टाच्छिद्रेष्वप्यक्लिष्टा भवन्ति अक्लिष्ट छिद्रेषु क्लिष्टा इति।** अर्थात् क्लिष्ट वृत्तियों के बीच–बीच में अक्लिष्ट वृत्तियाँ आ जाया करती हैं और अक्लिष्ट के बीच में क्लिष्ट वृत्तियाँ रहा करती हैं। उदाहरण के लिए इसे ऐसा समझ लो। मानसिंह नाम का डाकू मध्य भारत में मशहूर हुआ है। क्लिष्ट वृत्तियों के कारण उसकी डाकू की प्रवृत्ति बनी किन्तु अक्लिष्ट वृत्तियों के बीच–बीच में रहने के कारण वह पुण्य के कार्य भी किया करता था। वह विद्यालयों की स्थापना में पैसे लगाता था, कुएं तालाब खुदवाता था, अन्न क्षेत्र खोलता था तथा अनेक प्रकार से गरीबों का मददगार भी था। इस प्रकार से वह धन का उपयोग कुछ पुण्य के कार्यों में भी करता था। अस्तु। हम लोग इन्द्रियों के बाह्य विषयों को ही ग्रहण करते हैं। यह सारा बाह्य भोग है हमें भीतर का ज्ञान हो नहीं पाता। अच्छी व बुरी दोनों प्रकार की वृत्तियों को निपटाने के दो क्रम हैं। एक तो है **'ध्यान हेयास्तद्वृत्तयः'** के नियम से हम ध्यानयोग के अभ्यास से वृत्ति को हटा लेते हैं। ध्यान योग के अभ्यास से इन वृत्तियों का स्थूल रूप तो खत्म होता है किन्तु वृत्तियाँ सूक्ष्म रूप में रह जाती हैं वे **'ते प्रति प्रसवहेयाः सूक्ष्मा'** के अनुसार समाधि अथवा लयता को प्राप्त होने पर समाप्त हो जाती हैं। ध्यान योग का अभ्यास क्रम धारणा, ध्यान और समाधि के अभ्यास से बनता है। मैं तुम्हें धारणा, ध्यान के **विषयों** में रोज–रोज ही समझाता रहता हूँ। **'देशबन्ध चित्तस्य धारणा'** अपने चित्त को एक लक्ष्य स्थान पर जमाना धारणा कहलाता है। बाह्य और आभ्यन्तर भेद से धारणा दो प्रकार का होता है। बाह्य धारणा में जैसे गीता में भगवान् ने **'संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वंदिशश्चानवलोकयन्'** के अनुसार हठयोग की विधि से धारणा का उपदेश दिया है। किन्तु इस धारणा के लिये भी पहले त्राटक का अभ्यास करना आवश्यक हो जाता है। त्राटक हठयोग का विषय है।

वासना भोगी हठयोग का अधिकारी नहीं होता कोई जितेन्द्रिय पूर्ण ब्रह्मचारी एवं संयमी को ही हठयोग का अभ्यास करना चाहिये। नासिकाग्र पर धारणा करने से पहले त्राटक का अभ्यास करना होता है। त्राटक के अभ्यास में एक काला बिन्दु बनाकर उसे बार–बार देखना होता है। धीरे–धीरे अभ्यास बढ़ाते–बढ़ाते उस काले बिन्दु के चारों ओर प्रकाश दिखाई देने लगता है। देखते–देखते काला बिन्दु भी दीखना खत्म हो जायेगा केवल रोशनी ही रह जायेगी और वह रोशनी आंखों में समा जायेगी। जो उसे दिव्य दृष्टि वाली बना देगी। हमने उस प्रकाश वाली आँखों से नासिकाग्र भाग को देखना शुरू किया धीरे–धीरे वह रोशनी मूर्धा ज्योति तक आ गई इसका परिणाम होगा **'मूर्ध ज्योतिषि सिद्ध दर्शनम्'** अर्थात् मूर्धा ज्योति के दीख जाने पर सिद्धों के दर्शन होने लगते हैं और सिद्धों का दीखना खाली नही जाता। वह सामने आने पर साधक को मनोऽभिलाषित पदार्थ दे देते हैं वरदान आदि दिया करते हैं। सिद्धों के संकल्प से योगी सहस्रार तक पहुंच जाता है इस प्रकार से उसकी निर्बीज समाधि होने लगती है। यह बाह्य धारणा का फल है यह बात अलग है कि इन बाह्य धारणा को त्राटक तक सीमित रखें या आगे बढ़ायें।

योग दर्शन में **'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्'** का सिद्धान्त आता है। इसका तात्पर्य है कि सूर्य में संयम करने से योगी को समस्त भुवनों का ज्ञान हो जाता है किन्तु यह संयम स्थूल सूर्य में नहीं करना होता। हमारी आँखें अग्नि तत्व की बनी हैं और सूर्य उस अग्नि तत्व का केन्द्र है। नियमानुसार बड़ी शक्ति छोटी शक्ति को अपने में मिला लेती है। यदि हम स्थूल सूर्य पर अपनी इन आंखों से देखना प्रारम्भ करेंगे तो हम अन्धे हो जायेंगे। कुछ दिन पूर्व चण्डीगढ़ में किसी व्यक्ति ने इसी प्रकार से सूर्य पर संयम करना प्रारम्भ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि वह बिल्कुल अन्धा हो गया। उसकी आंखों की रोशनी जाती रही। योगी अपने संयम बल से सूर्य में संयम करता है इस प्रकार लयता करके भुवन ज्ञान प्राप्त करता है। बनारस में हमारा एक साधु रहता है उसे श्री प्रभु जी ने पाँच रुपये महीने पर भोजनादि बनाने के लिये रख लिया था। बाद में हमारे जमाने में ही उसने श्री प्रभु जी के सामने ही त्राटक का अभ्यास करना शुरु कर दिया था। श्री प्रभु जी की कृपा एवं शक्तिपात उसे प्राप्त हो गया। बाद में वह बनारस चला गया। हमारा एक बच्चा विष्णु है वह बतलाता था कि वह साधु त्राटक के परिणाम स्वरूप दीवार के उस पार आने वाले व्यक्तियों को भी देख लेता है। यह शक्ति उसको त्राटक के अभ्यास से प्राप्त हुई। उसकी आंखें तेजोमय हो गई थीं। ऐसा व्यक्ति उन आंखों से जमीन के भीतर सभी वस्तुओं को देख लेने में समर्थ हो जाता है। अस्तु। दूसरी धारणा होती है आभ्यन्तर धारणा। धारणा का अभ्यास करते–करते साधक ध्यान की स्थिति में पहुँच जाता है 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'

अर्थात् लक्ष्य स्थान पर इष्ट का बराबर दीखते रहना। एकता नता–सदृश प्रवाह तैल की धारा के समान वृत्ति का जमा रहना ध्यान कहलाता है। ध्यान की अवस्था में ध्याता अर्थात् ध्यान करने वाला ध्यान प्रक्रिया तथा ध्येय (लक्ष्य) इन तीनों का ज्ञान रहता है। ध्यान का अभ्यास करते–करते समाधि की अवस्था आ जाती है। समाधि का अर्थ **'तदेवार्थ मात्रनिर्भासम स्वरूप शून्यमिव समाधि'** अर्थात् जिसका हम ध्यान कर रहे हैं वही वही दीखता रहे अपना स्वरूप भी समाप्त जैसा हो जाये उसे समाधि कहते हैं। जैसे मान लिया हम गणेश जी का ध्यान कर रहे हैं, ध्यान करते–करते जब समाधि अवस्था आ जायेगी तो उस अवस्था में हम अनुभव करेंगे **'गणपतिरहम्'** अर्थात् मैं ही गणपति हूँ **शिवोऽम्'** मैं ही शिव हूँ। मैं स्थान–स्थान पर लोग मेरी पूजा अर्चना कर रहे हैं। धारणा ध्यान तथा समाधि के अंतरंग हैं। क्लिष्टाक्लिष्टि दोनों प्रकार की वृत्ति को ध्यान के द्वारा हटाया जा सकता है। ध्यान योग का अभ्यास करने वाले के शरीर के जो भोग स्थूल शरीर पर आने वाले होते हैं वह ध्यान के प्रभाव से सूक्ष्म में ही कट जाते हैं। इनमें कुछ ऐसे भी दृढ़ संस्कार होते हैं जो ध्यान में भी नहीं कट पाते वह प्रतिप्रसव अर्थात् समाधि की पराकाष्ठा में ही कटते हैं। उसी स्थिति को प्राप्त हुये योगी के विषय में कहा जाता है–

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्मणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

इस समाधि की पराकाष्ठा को पा जाने पर योगी के समस्त कर्म संस्कारों का क्षय हो जाता है। पुनः कोई संस्कार फिर नहीं बनता। इसी को परावर दर्शन कहते हैं। अस्तु। **'ध्यान हेयास्तद्वृत्तयः।'** के अन्तर्गत मैंने तुम्हें रामरती का उदाहरण दिया था। रामरती के विषय में तुम सब जानते ही हो। उसके जीवन में बहुत ही क्लिष्टवृत्तियों का संस्कार चल रहा था। किन्तु आनन्दकन्द श्री प्रभु जी की कृपा से उसकी सब क्लिष्ट वृत्तियाँ समाप्त हो गई। श्री प्रभुजी के शक्तिपात से उनका ध्यान योग में तत्काल प्रवेश हो गया और योगिनी बन गई। यद्यपि प्रभु जी ने उन्हें तत्व विजयी तो नही बनाया, उसे वन वासिनी तो बना ही दिया। इसी प्रकार की एक और घटना श्री प्रभु के चरणों में घटित हुई थी। एक बार श्री प्रभु के पास अमृतसर से एक देवी लाई गई। वह परपुरुष में परमासक्त थी। उसके परिवार वालों ने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की कि ऐसी कृपा करें कि इसका मन बदल जाये। श्री प्रभु जी ने उससे पूछा–क्या तू भगवान श्री कृष्ण का ध्यान करेगी। वह कहने लगी नहीं, मुझे राम कृष्ण आदि से क्या वास्ता ? प्रभु जी ने कहा–तुझे सबसे अच्छा कौन लगता है ? उसने कहा–मुझे अपने प्रेमी अच्छे लगते हैं। श्री प्रभु जी ने कहा–अच्छा ! ठीक है तू

अपने हृदय में उसी का ध्यान कर ! ऐसा कहकर प्रभु जी ने उसे उसी व्यक्ति के ध्यान में बिठा दिया। देखो ! सब के हृदय में परमात्मा का वास है। ध्यान करते-करते उसे ऐसा लगा कि उसके प्रेमी बहुत ही सुन्दर रूप में दिखाई दे रहे हैं। एक दो दिन इसी प्रकार ध्यान रखते हुए उसे लगा कि उस रूप में भगवान कृष्ण का दर्शन प्रारम्भ हो गया। वह उन्हीं में तल्लीन रहने लगी। कुछ दिन के बाद श्री प्रभु जी ने उससे पूछा-देवी ! क्या तू उस आदमी से अब भी प्यार करेगी ? वह कहने लगी – प्रभु जी ! अब तो मैं उसको देखना भी नहीं चाहती हूँ। आपने मुझे वह वस्तु दे दी है जिसके आगे सारा संसार तुच्छ लगता है। इस प्रकार से पर पुरुष में आसक्त उस महिला का मन **'ध्यान हेयास्तद्वृत्तयः'** के अनुसार ध्यान के प्रभाव से बिल्कुल बदल गया।

मैंने तुम्हें कई बार पहले बताया है कि जब मन को भीतर के दिव्य रस प्राप्त होने लगते हैं तो बाहर के संसार से उसका मन स्वतः ही हटता चला जाता है। यह एक स्वाभाविक नियम की बात है। श्री प्रभु जी अपनी पद्धति के अनुसार अपने बच्चों (साधकों) को विचारानुगत समाधि के अन्तर्गत लोक लोकान्तर दिखा दिया करते थे ताकि स्वर्ग के भोगों के प्रति साधक की रुचि समाप्त हो जाये। एक बार श्री प्रभु जी ध्यान में भाई गोपालानन्द जी को इन्द्रलोक ले गये। वहाँ अप्सराओं का नृत्य हो रहा था। ब्रह्मचारी जी नृत्य आदि देखने में रुचि लेने लगे। इतने में श्री प्रभु जी अन्तर्ध्यान हो गये। ब्र. गोपालानन्द जी कहने लगे-प्रभु जी। आप कहाँ चले गये हैं श्री प्रभु जी पुनः प्रकट होकर कहने लगे तू इनमें मन लगा रहा था इसलिये हम अन्तर्धान हो गये। तू इन्हें देखने के लिये देख किन्तु मन मत लगा। **ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः** के उदाहरण के रूप में साईदास और मंगामल का चरित्र सामने रख सकते हैं। साईदास के भी बहुत क्लिष्ट कर्म थे। बहुत ही बिगड़ा हुआ व्यक्ति था। शराब वह पीता था व्यभिचार तथा अन्य कई दुर्गुणों से बुरी तरह ग्रस्त था उसकी इच्छा उसे श्री प्रभु जी के चरणों में लाई। श्री प्रभु जी की शक्तिपात को पाकर उसका ध्यान जमने लगा। सारा-सारा दिन ध्यान में ही बैठा रहता था। इसी प्रकार से अमृतसर का रहने वाला मंगामल था उसका भी उदाहरण मैं तुम्हें प्रायः बताता ही रहता हूँ। वह भी लाहौर की किसी महिला में आसक्त था। उसके संस्कार इस प्रकार के थे कि यदि वह उस महिला के कहने में आ जाता तो वह उससे पैसे व सामान लेकर बाद में जान से मार देती किन्तु श्री प्रभु जी ने ठीक समय पर उसे सम्हाल लिया उसकी रक्षा हो गई। श्री प्रभु जी की शरणागति पाकर वह भी ध्यान योग में प्रवेश पा गया और जीवन बिल्कुल बदल गया। तुलसीदास, सूरदास, रसखान आदि-आदि भी काम प्रवृत्ति के लोग थे। किन्तु

प्रभु कृपा पाकर ध्यान योग के प्रभाव से इन सब का जीवन सुधर गया और परम भक्तों में गिनती हो गई और अपने जीवन को धन्य बना दिया। उपनिषदों का लेख है–

'यदि शैल समं पाप विस्तीर्ण बहुयोजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यः भेत्ता कदाचन्'।

अर्थात् यदि पापों का पहाड़ का पहाड़ भी हो तो ध्यान योग के प्रभाव से नष्ट हो जाता है। पाप भी ध्यान योग के प्रभाव से नष्ट हो जाता है। पाप को नष्ट करने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। मैं तुम्हें ध्यान हेयास्तद्वृत्तयः' की बात समझाते हुये बता रहा था कि जब मनुष्य का मन अन्तर्मुखी हो जाता है तो संसार की दुष्प्रवृत्तियाँ छूटने लगती हैं। देखो ! मनुष्य मल–मूत्र से घृणा करता है उसे देखना भी नहीं चाहता किन्तु सूअर आदि का वह आहार होता है। इसी प्रकार से मनुष्य अन्न खाता–पीता है मल–मूत्र का त्याग करता है इसलिये देवता लोग मनुष्य को हीन भावना से देखते हैं। अन्न जल खाने–पीने वाले मनुष्य को सिद्ध लोग हिमालय में रहने नहीं देते। मनुष्य जब ध्यान योग से अन्दर के दिव्य दृश्यों को देखने लगता है तो संसार का बाह्य आकर्षण छूटने लगता है। भीतर के दृश्य हमें मुक्ति की ओर ले जाते हैं और बाहर के विषय पतन और मौत की ओर ले जाते हैं। इसलिये यदि तुम अपनी दुष्प्रवृत्ति एवं क्लिष्ट वृत्तियों को समाप्त करना चाहते हो तो ध्यान योग का अभ्यास करो। ध्यान में बैठने से वृत्तियाँ बदल जाया करती हैं। तुम्हें श्री प्रभु जी का मन्त्र मिला हुआ है। यदि संयतेन्द्रिय होकर ठीक प्रकार से जप व ध्यान किया जाये तो छः माह में ही सब कुछ मिल जायेगा। इसलिये सारी बुराइयों से, दुष्प्रवृत्तियों से छूटना चाहते हो तो इसका एक मात्र उपाय है मन को भीतर की ओर लगाओ। इसी से सब प्रकार का कल्याण होगा।

❋❋❋

पयः पानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनम्।
उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।।

अर्थात्, जैसे साँप को दूध पिलाना सिर्फ उसका विष बढ़ाना है वैसे ही मूर्ख को उपदेश देना उसके क्रोध को बढ़ाने वाला होता है। शान्त करने वाला नहीं।

• सम्पादकीय

योगियों का कर्म आत्मशोधन के लिये

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

इस पृथ्वी पर आकर प्रत्येक मनुष्य को कर्म करना होता है। कर्म किये बिना उसकी जीवन यात्रा पूरी नहीं हो सकती। वैसे भी प्रकृति एवं संस्कार के वशीभूत हुआ मनुष्य एक क्षण के लिये भी कर्म किये बिना नहीं रहता यह गीता का वचन है। **गहना कर्मणो गतिः'** कर्म की गति बहुत गहन है। कर्म के स्वरूप एवं लक्ष्य का निर्धारण हर व्यक्ति नहीं कर पाता। रजोगुण एवं तमोगुण से आवृत्त चित्त वाले व्यक्ति अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए कर्मरत रहा करते हैं। कर्मानुसार उन्हें क्षणिक तृप्ति व सुख मिलता भी है किन्तु स्थायी सुख नहीं मिल पाता। इस प्रकार से मलिन भावना से किये गये कर्म क्षणिक सुख देकर समाप्त हो जाया करते है ऐसे कर्मों का परिणाम दुःखरूप ही होता है। श्रीमदभगवद्गीता में भगवान अपने मुखारविन्द से कहते है–**योगिनः कर्मकुर्वन्ति संगम् त्यक्त्वा आत्मशुद्धये'**। योगी लोग आसक्ति को त्यागकर आत्मशुद्धि के लिये कर्म करते हैं।

आत्मशुद्धि के लिये सर्वप्रथम स्थूल शरीर की शुद्धि की बात आती है। अष्टांग योग के अन्तर्गत आसन एवं प्राणायाम स्थूलशुद्धि के उपाय है। बन्ध, मुद्रायें, जीवन तत्व साधन, षट्कर्म शरीरगत नाड़ियों की शुद्धि के लिये परमोपादेय हैं। नाडियों में कफ, वात एवं पित्त जन्य मल रहा करते हैं जो धीरे–धीरे अनेक रोगों के उत्पादक हो जाते हैं। इस प्रकार से यौगिक साधनों से वात, पित्त एवं कफ के आशयों की शुद्धि की जाती है जिससे शरीर में लघुता, आरोग्यता आती है साथ ही मन एकाग्रता को प्राप्त होने लगता है। प्राणायाम वात, पित्त एवं कफ तीनों दोषों को समावस्था में रखता है। इसलिये योग साधक प्राणायाम परायण रहते हैं।

प्राणायाम से प्रकाश के मार्ग में जो अवरोध हैं वह दूर हो जाते हैं। प्राणोपासना की उपनिषदों में बहुत महिमा गाई गई है। अनादिकाल से ही ऋषियों ने प्राणोपासना की, जिसका फल है–**देवोभूत्वा देवानप्येति'** अर्थात् देवता बनकर देवलोक को प्राप्त होता है। यह प्राणोपासना अध्यात्म विषयक है। प्राण की ही बृहस्पति संज्ञा है क्योंकि वाक् ही बृहती है और यह उसका पति है। अंगिरा ऋषि ने प्राण की उपासना की। इसलिये प्राण का एक नाम आंगिरस भी है। इसी तरह से मुख (नासिका) से आवागमन होने के कारण **आयास्य** भी इसका ही नाम है। छांदोग्य उपनिषद् में आया है कि नासिका में प्रवाहित होने वाले प्राण को तो असुरों ने पापविद्ध कर दिया मुख्य प्राण हृदय प्रदेश में रहने के कारण यह

पापविद्ध नहीं हुआ। इसलिये मुख्य प्राण को अपहतपाप्मा अर्थात् विशुद्ध कहा गया है। जो प्राणोपासक के प्रति दुर्भाव रखता है अथवा उसे कष्ट देता है तो वह नष्ट हो जाता है अथवा पतित हो जाता है। हर व्यक्ति के नासिका रन्ध्रों से परमाणु निकला करते हैं। तमोगुण व रजोगुण वृत्ति वाले व्यक्तियों की नासिका से अश्वेत परमाणु निकलते हैं किन्तु जो साधक व आत्मवान् योगी होते हैं उनकी नासिका से चमकीले–चमकीले प्रकाशयुक्त किरणें निकला करते हैं।

सिद्धयोगियों व अवतारी पुरुषों के मुखमण्डल के चारों ओर प्रकाश की किरणें देखने में आती हैं। इसी तेज पुंज को Aura कहते हैं। योगी कितनी विकसित शक्ति वाला है इसका नाम इसी Aura से ही होता है इसे ध्यान योगी ही देख पाते हैं सामान्य जन नहीं।

छांदोग्य उपनिषद् में ही आता है कि असुरों ने चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियों को पापविद्ध कर दिया। इसका तात्पर्य यही है कि मनुष्य ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग भोग के लिये करता है तो वही पापविद्ध होना है। किन्तु जब इसे योग में लगा दिया जाये तो मुक्ति के कारण बन जाते हैं। इसलिये योगी के लिये गुरुओं का उपदेश रहता है कि ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग योग के लिये करो। भोग के लिये नहीं। इस सम्बन्ध में कठोपनिषद् का एक मन्त्र द्रष्टव्य है– **'कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत चक्षुरमृतत्वमिच्छन्'** अर्थात् अमरत्व की इच्छा वाला कोई धीर पुरुष जिसने अपने चक्षु, श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों को आवृत कर लिया है, अन्तर्मुखी कर लिया है, इस प्रत्यगात्मा को देख पाता है। इस प्रकार से इन्द्रियों को जो विषयों से हटा लेता है और अन्तर्मुखी बन जाता है ऐसा योगी अमरत्व को पा जाया करता है।

अजपा की साधना प्राणोपासना की ही साधना है। सिद्धमार्ग के गुरु अपने शिष्यों को इस मार्ग का उपदेश देते हैं। आत्मशुद्धि के लिये इसके समान दूसरा दृढ़ उपाय नहीं है। अजपा जाप आत्मंत्र माना जाता है। इसके लिये कहा जाता है कि इसके समान कोई दूसरा मन्त्र नहीं है। आत्मशोधन के लिये अजपा की साधना सर्वमान्य है। यह जीव की स्वाभाविक साधना है। इसे गुरुमुख से ही जानना चाहिये, शास्त्र पठन से नहीं, तभी यह फलवती होता है।

ध्यानयोग आत्मशुद्धि का अन्यतम् उपाय है ही। ध्यानयोग के अभ्यास से ही चित्त की शुद्धि होती है। जड़–चेतन की गाँठ खुलती है। अविद्या का नाश होकर ऋतम्भरा प्रज्ञा का प्राकट्य होता है। तभी पूर्ण रूप से **'सत्वपुरुषयो शुद्धि साम्ये कैवल्यम्'** प्रकृति और पुरुष दोनों की समान रूप से शुद्धि हो जाने पर कैवल्य मोक्ष की प्राप्ति होती है।

✲✲✲

भजन

स्वर भी तेरा सुर भी तेरा, है तेरा ही सम्मान। गुरु जी–तेरा ही......
मैं तो धौंकनी लुहार की, सांस लेत बिन प्राण।।

(तर्ज : गाड़ी आले मनै बिठाले)

संवाई वाले, भाग्य जगा दे, दया की दृष्टी डाल....
गुरुजी मैं आऐ गया।।

जब से तेरा शरण मिला–आरती पूजा करता हूँ।
सन्मुख होकर ध्यान करूँ–कोरा ही उठ जाता हूँ।।
लल्ला कह कर उर से गा लो–रख दो सिर पर हाथ। गुरुजी.......

हृदय रूपी मेरी खेती–चरण गंग बिन सूख रही,
कैसे फल–फूल लगैं आशा मेरी टूट रही,
योग प्रेम की वर्षा कर दो– कर लूँ मैं स्नान।। गुरुजी......

भजन पाठ मुझे आता ना ध्यान कहाँ से लग ज्यागा
पाँच तत्व का नव द्वारा जल कर ढेरी हो जाग्या
इस नगरी में आओ गुरुजी दे दो गीता ज्ञान।। गुरुजी.......

माली सिचैं सौ घड़ा बाग हरा हो जाता है
योगेश्वर की शरण पड़ा फल जल्दी पक जाता है
धोली धोती, धोला कुर्ता मन्द मन्द मुस्कान।। गुरुजी.....

शंकर के अवतारी हो दुनियाँ के रखवाली हो
लाखों पापी तार दिए झोली सब की भरते हो
अशरण–शरण के रक्षक दाता हूँ बालक नादान।। गुरुजी...........

६८ तीर्थ श्री चरणों में मेरा गोता लगवा दो
प्रभु रामलाल के चरणों में मेरा खाता खुलवा दो
हर पल का मैं आशावादी दे दो आशीर्वाद।। गुरुजी.......

योगेश्वर का मनोदेश हुआ संवाई में प्रवेश मिला
पाप के ऊपर पुण्य छाया सिद्धेश्वर का दर्श हुआ
लीला अद्भुत लीलाधर की अधम सदा कुर्बान।। गुरुजी.....

जगदीश राय बंसल ''अधम''
गोहाना मंडी (सोनीपत)

मेरे सद्गुरुदेव

लेखक—विजय सिंह

श्री सद्गुरु का स्वरूप क्या है ? असम्प्रज्ञात समाधि में ज्ञानस्वरूप सम्प्रज्ञात समाधि में निजबोध रूप। अपनी श्रद्धानुसार ही इष्ट का एवं सद्गुरु का बोध साधक को होता है। श्री सद्गुरु भगवान के सभी लल्ला–लल्लियाँ यही भान करते रहे हैं कि सद्गुरु हमें सबसे ज्यादा स्नेह करते हैं, अन्यों की अपेक्षा। हर व्यक्ति के दृष्टि तेज का अपना आकाश होता है। उसी प्रकार हर साधक के समर्पण, शुचिता, आत्म–श्रद्धा के अनुरूप ही इष्ट एवं सद्गुरु का मानस आकार चिद्शक्ति आधार पर प्रकट होता है। श्री सद्गुरु के दृष्टि निःक्षेप से जाग्रत कुण्डलनी शक्ति साधक के श्रद्धा व संस्कारों के अनुसार कार्य रूप में बाहर–भीतर शोधन करती हुई पशु को पशुपति, जीव को शिव रूप में निरन्तर रूपान्तरण कर रही होती है।

सद्गुरु कृपा कभी व्यर्थ नहीं जाती है। शक्ति जन्म–जन्मान्तरों में कार्य करती रहती है। जब तक साधक पूर्ण विकास को प्राप्त नहीं कर लेता। शास्त्र का कथन है कि श्री सद्गुरु प्रबोधित साधक की कुण्डलनी जब तक सहस्रार में पहुँच कर जन्म–जन्मान्तरों से बिछुड़े अपने पति शिव से नहीं मिलती तब तक साधक को उस दिशा में जाने–अनजाने प्रेरित करती ही रहती है। यह विश्व शक्ति है। शिव की प्रथम उन्मेष शक्ति है। शिवस्तोत्रावली में कहा गया है–"आनन्दोच्छलिता शक्तिः सृजयात्मानमात्मना" अनन्त अपार यह आह्लादनी शक्ति उछल कर, अपने को विभिन्न रूपों में व्यक्त करने लगती है। जाग्रत, स्वप्न, सुशुप्ति तथा तूर्य अवस्थाओं में जो कुछ भी है वह इस शक्ति का ही चिदविकास है। काश्मीरी शैवाचार्यों का कथन है–

चितिः स्वतंत्रता विश्व सिद्धि हेतुः।
स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।।

तात्पर्य यह कि स्वतंत्र चिति (महाकुण्डलिनी शक्ति) इस विश्व के प्रसवन, प्रलयन एवं स्थिति का कारण है। वह अपनी स्वतंत्र इच्छा से इस विश्व को अपने ही कैनवस (पट) पर प्रकाशित करती है।

इस शक्ति के अभाव से ही मनुष्य संसारी दरिद्री सर्वकष्ट भोगी बना रहता है। दर्शन में कहा गया है "शक्तिदरिद्र संसारी उच्यते" इसी हेतु से श्री सद्गुरु भगवान हम सभी को बार–बार आज्ञा देते थे कि नियमानुवर्तिता से जप और ध्यान करो। इससे तुम्हारा संसार

भी सधेगा और परमार्थ की प्राप्ती भी होगी। जप और ध्यान से, आर्तभाव से इष्ट सद्गुरु चरण चिन्तन से, श्री सद्गुरु प्रबोधित कुण्डलिनी शक्ति प्रसन्न होकर साधक को सर्व चिन्ताओं को हर लेती है। **''यम यम चिन्तयते कामम् तद् तद् प्राप्नोति निश्चयम्''**

अतः सिद्धयोग में महाशक्ति जागरण ही गुरु–शिष्य के सम्बन्ध का अलौकिक व्यापार है। 'शक्तिपात योगसूत्र' में कहा गया है–सा क्रियावती, कलावती, वर्णमयी, वेधमयीति ब्रह्मा।

ब्रह्माजी ने कहा, 'शक्ति क्रियावती है, क्योंकि वह सभी क्रियाओं का कारक है। वह कलावती है क्योंकि वह काया के छत्तीस तत्वों की शुद्धि करती है। वह वर्णमयी है क्योंकि सारे अक्षर एव ध्वनियाँ उसी से निकली हैं। वह वेधमयी है क्योंकि वह काया में सर्व चक्रों में बाधित इच्छा, ज्ञान, क्रिया, चिद् एवं आनन्द के अवगुण्ठन को बेध कर मुक्त करती है।

आदि शंकराचार्य जी ने कुण्डलिनी की पूरी मात्रा का विवरण "आनन्दलहरी" में गाया है–

मही मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुत्तमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकल भित्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि।

अर्थ है–

कुण्डलिनी सद्गुरु कृपा से प्रबोधित हो सद् साधक के मूलाधार चक्र में पृथ्वी–तत्व (पंचमहाभूतात्मक तन्मात्राओं सहित), स्वाधिष्ठान चक्र में जल–तत्व, मणिपूर में अग्नि–तत्व, अनाहत चक्र में वायु–तत्व, विशुद्ध चक्र में आकाश–तत्व को सम्पूर्ण रहस्यों सहित ज्ञान कराती है साथ ही उर्ध्वरेतस साधकों को इन पंचीकरणों पर विजय दिलाती है। वशवर्ती बना देती है। आगे आज्ञा चक्र बेधन द्वारा मन–तत्व (मनोमय कोषों का परिष्करण के साथ चिदाकाश– प्रज्ञा, विवेकख्याति) पर अधिकार दिला कर आत्मदर्शन की योग्यता प्रदान करती है। अभी अतृप्त महामाया की यात्रा यहीं पर समाप्त नहीं होती। सद्गुरु शरणापन्न पर महामाया कुण्डलिनी की अद्भुत् कृपा से वह स्वयं सहस्रार के सहस्रदल कमल में अपने परम प्रियपतिशिव के साथ प्रकृति से परे मन, बुद्धि, चित्त, संकल्प–विकल्प, कल्पना–जल्पना से कोसों दूर एकान्त विहार में निमग्न हो जाती है। असमर्थ पशु रूपी जीव अब अपने मूल स्वरूप में पशुपति भाव को प्राप्त होता है।

जिसके भी कुण्डलिनी का जागरण और निर्विघ्न चक्र बेधन हो गया वह योगी सर्वकर्मों, संस्कारों से सदैव के लिये मुक्त हो गया। वह चाहे शरीर में रहता हुआ जाग्रत हो प्रमाद सुशुप्ति में हो वह सदैव सहज समाधि में होता है।

गत लेखों में मेरे श्री सदगुरुदेव की कृपा से भाई महेन्द्रनारायण में शक्तिजागरण से होने वाले अलौकिक व्यापार जिसे हमने अपने छात्र जीवन में स्वयं देखा था, स्वल्प उद्धरणों द्वारा विवेचना करने की धृष्टता किया हूँ। यह एक उदाहरण मात्र है। ऐसा अनेक लोगों पर कृपा हुई है। भाई श्री खड्डर जी, भाई श्री दुर्गा सिंह तोमर, भाई श्री चन्द्रहास शर्मा भाई श्री डा० जगदीश मालगुडी, भाई श्री डा० राजेन्द्र पाल, महात्मा हरि ॐ भाई श्री ग्रोवर, पुरी की माता जी, आदि-आदि अनेक नाम रूप गृहस्थों ब्रह्मचारियों, विरक्तों में संसार सिंह तथा अनेक हमारे अपने सुहृदजन ज्ञात और अज्ञात मेरे मानस पटल पर उभरते आ रहे हैं।

प्रयाग राज में आँखें बन्द कर चलने वाली वह वृद्धा माता कैसे भीड़ भाड़ भरे सड़क पर भी बन्द आँखों सहज रूप से यात्रा करतीं थीं। यह सब श्री सदगुरु के कृपा शक्ति का ही खेल रहा है। अब भी हो रहा है।

जैसा कहा गया शक्ति जागरण से संस्कारों में बड़ी तेजी से उथल-पुथल मच जाती है। षड्रिपु साधक को परम लक्ष्य की ओर बढ़ने में नाना विघ्न आते हैं। जो अपने अहं का सम्बल लिया वह तो परास्त-ध्वस्त बिखर सा जाता है परन्तु जो सदगुरु के सामने अपने को समर्पित कर उनसे रक्षा चाहता है वह इन संकटों से उबरता है। हे प्रभो ! तुम्हारी प्राप्ति के मार्ग में ये इन्द्रियों के चोर मेरे साथ लग गये हैं जो बार-बार हमें परमतत्व से दूर कर रहें हैं। हे दिव्याति दिव्य परम विभु रूप श्री सदगुरु करुणांद शिव मुझे शक्ति दें कि इन्हें परास्त कर दूँ। देखने में परन्तु यह आया कि जो साधक यह समझने लगा कि यह सब इसलिये है कि मैं अन्यों से भिन्न कुछ विशेष गुणों वाला हूँ तब उसकी योग-भ्रष्टता सुनिश्चित हो गयी। उनका चित्त दुराग्रह पूर्ण हो उठा। वे श्री सदगुरु के क्रिया व्यवहार में पक्षपात देखने वाले हो गये। भेद बुद्धि ग्रसित ऐसे लोगों को महाशक्ति कुण्डलिनी नाना प्रकार के दण्डों द्वारा सचेत करके पुनः ठीक मार्ग पर लाने की पूरी चेष्टा करती है। परन्तु निष्ठुर श्रद्धा विरहित मन पतन को ही अपना सुख मानने लगता है। तब मन की अपवित्रता के चलते वही प्रभु दूर भासने लगते हैं। अन्तःकरण को तमाच्छादित करने वाले छः रिपु, काम, क्रोध, मत्सर आदि पुनः साधक को घेर लेते हैं।

भाई महेन्द्रनारायण को कालीखोहा में जो साक्षात अनुभूति हुई थी उसका विवरण देखें-यह स्थान भारत के ५१ सिद्धपीठों में से एक है। सन् १९६८ में श्री गुरुदेव जी के साथ हम सभी (लेखक भी) मिर्जापुर के इस अरण्य पीठ की यात्रा किये थे। स्नान इत्यादि से निवृत्त होकर हम सब मंदिर में श्री प्रभुजी के साथ गये थे। भाई जी पहले से ही दिव्य दृष्टि से देखकर बताने लगे कि जगदम्बा कालिका ने श्री गुरुदेव जी के पूजनार्थ सारी

तैयारी करके प्रतीक्षा कर रही है। माँ का बड़ा ही दिव्य तेजोमय स्वरूप है। मंदिर में श्री सद्गुरु देव जी के प्रवेश करते ही महायोगिनी जगत जननी ने उठकर जगतनियन्ता का स्वागत किया तथा दिव्य सिंहासन पर श्री गुरुदेव जी को विराजमान कराकर रत्न जड़ित कनक थाल में दिव्य जोति जगाकर श्री गुरुदेव जी की आरती करनी प्रारम्भ की। अदृश्य से समवेत नारी कण्ठों से गायी जा रही आरती की मधुर ध्वनि स्पष्ट सुनाई पड़ने लगा। श्री गुरुदेव जी के चरणों से ऐसी तीव्र प्रकाश धारा की वर्षा हो रही थी कि उस तेज के सामने उपमा में कोई अनुभूत अन्य प्रकाश टिक नहीं सकता। अन्त में श्री गुरुदेव जी ने महाकालिका को पुष्प प्रसाद दिया। माता ने बड़े ही विनीत भाव से प्रसाद लेकर सिरोधार्य किया।

शास्त्र कथन है कि—अन्धे को सूर्योदय का प्रकाश नहीं दीखता, उसी प्रकार मन्द भाग्य वाले परम तत्व रुप श्री गुरुदेव के साथ होने पर भी उनको नहीं जान पाते हैं। सद्गुरु कृपा से विवेक चक्षु उन्मिलित होने पर श्री गुरुदेव को तात्विक रूप से समझने की सामर्थ्य प्राप्त होती है।

श्री गुरुं परमं तत्वं तिष्ठन्तं चक्षुरग्रतः।
मन्दभाग्या न पश्यन्ति ह्यन्धा सूर्यमिवोदितम्।।

❊❊❊

मन की एकाग्रता के साधन

मन को एकाग्र करना और एकाग्र बनाए रखना कोई सरल काम नहीं अत्यन्त कठिन कार्य है। अच्छे—अच्छे लोग ज्यादा देर तक मन को एकाग्र नहीं रख पाते और जो मन को इच्छानुसार समय तक एकाग्र नहीं रख सकता वह ध्यान की स्थिति को कैसे प्राप्त कर सकता है ? इस कठिनाई को हल करने और मन को एकाग्र करना सरल करने के लिए कई साधन और माध्यम खोजे गये जैसे जाप करना, भजन गाना, पूजा करना, मन्त्र पाठ करना, संगीत साधना करना, मंदिर में जाकर अर्चना करना, गिरजाघर या गुरुद्वारे में जाकर प्रार्थना करना आदि। ये सभी उपाय मन को एकाग्र करने और ध्यान की अवस्था तक पहुँचने के लिए निर्धारित किए गये थे। इन उपायों का सही उपयोग किया जाये, यह आवश्यक है। अन्यथा अभीष्ट फल प्राप्त नहीं हो पायेगा।

❊❊❊

'सिद्धयोग' कार्यालय की प्रस्तुति–

योगी अमीरानन्द जी द्वारा रचित भजनों में उनके "ध्यानानुभव"

परम् पूज्य गुरुदेव जी के पावन चरण कमलों में जिनका पूर्ण विश्वास है, दृढ़ गुरुभक्ति है तब तो गुरुकृपा की सहज प्राप्ति में कोई सन्देह किया ही नहीं जा सकता। ऐसे गुरुनिष्ठ बच्चों पर जो योगमार्ग में थोड़े ऊपर उठ गये है उन पर गुरुदेव हर समय अपनी करुण निगाह रखते हैं न जाने वह कब पतनोन्मुख हो जाय। किन्तु करुणा सिन्धु गुरुदेव जी के कर कमल उन नम्र–सदाचारी गुरुनिष्ठ बच्चों की सदा रक्षा किये रहते हैं।

योगी अमीरानन्द तीव्र लगन वाले एक ऐसे ही ध्यान–परायण गुरुनिष्ठ महात्मा थे। वे गुरुदेव जी के लाडले बच्चों में से एक थे। अनपढ़ होने के कारण महात्मा जी अपने आध्यात्मिक विकास हेतु धार्मिक साहित्यों से प्रोत्साहन लेने में असमर्थ थे। नये साधकों को धार्मिक साहित्यों से महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्राप्त होता है। किन्तु वरिष्ठतम् गुरुभाइयों में से एक अमीरानन्द जी के लिए पूज्य गुरुदेव ही उनके गीता–रामायण–वेद–पुराण थे। उन्होंने गुरुदेव जी से जो सुना उसी को सत्य माना जो गुरुदेव ने आज्ञा दी उसी का पालन किया। गुरुदेव ही एक मात्र उनके प्रेरणाबल थे। उन्होंने शुरू से ही ध्यानाभ्यास के प्रति प्रबल उत्साह दिखाया था।

उक्त चारित्रिक विशेषताओं से युक्त होने के कारण पूज्य गुरुदेव जी की महान अनुकम्पा के फलस्वरूप उन्हें ध्यान स्थिति प्राप्त हुई। ध्यान में योग योगेश्वर दादा गुरुदेव महाप्रभु जी रामलाल जी महाराज ने उन्हें अपनी अनेक लीलाओं को दिखाया। उन लीलाओं का ध्यान में दर्शन करके महात्मा जी का हृदय हर समय दिव्य आह्लाद से भरा रहता था। जिन लीलाओं को वे ध्यान में देखा करते थे बाद में उनकी तीव्रतर स्मृति करके अपने भजनों में उन लीलाओं का ऐसा सजीव चित्रण करते थे कि सुनने वालों को प्रतीत होता था कि जैसे वे अपने नेत्रों के सामने उन आत्मविभोर करने वाली प्रभुलीलाओं को प्रत्यक्ष देख रहे हों। महात्मा जी मात्र अक्षरज्ञान रखते थे। भजनों का लिपिबद्ध करना उनके द्वारा सम्भव नहीं था।

अपनी अनुभूतियों से सम्बन्धित अधिकांश भजन उन्होंने दूसरों से लिखवाये हैं। ध्यान–दृश्य के अनुरुप वे भजन की पंक्तियाँ तुरन्त अपने मुख से बोलते जाते थे। ऐसी विलक्षण कवीत्व सम्बन्धी योग्यता उन्हें पूज्य गुरुदेव जी की प्रसन्नता से स्वतः ही प्राप्त थीं।

योग प्रचार सभा सहारनपुर द्वारा प्रकाशित 'महात्मा अमीरानन्द योगी' नामक पुस्तक के अन्तर्गत महात्माजी के ध्यानानुभवों से सम्बन्धित अनेक भजनों को संकलित किया है।

महात्मा जी के परम मित्र स्व० श्री जुगमन्दर दास शर्मा (मंत्री जी) ने उनकी कवीत्व प्रतिभा के विषय में एक पुस्तक में लिखा है–

"इन भजनों के स्वर्णगान ने मेरे ह्रदय को गुदगुदा कर एक आह्लाद की तरंग से भरकर आँखों से प्रेम अश्रुधारा का श्रोत प्रवाहित कर मेरे मन को इन सभी रचनाओं को एकत्रित करने के लिए विवश कर दिया। आज महान कृपानिधान श्री गुरुदेव जी महाराज की असीम कृपा के फलस्वरूप मुझे इस कार्य को परिपूर्ण करने के लिए सहसा ही अवसर मिल गया। मुझे आशा ही नहीं वरन् विश्वास है कि यह संग्रह पाठकों तथा श्रोतागणों को अमृतपान करायेगा और श्री सद्‌गुरुदेव जी महाराज के चरण कमलों में अनुग्रह उत्पन्न करेगा जो सदा ही मोक्ष के दाता हैं।

–**जुगमन्दर दास शर्मा** (मंत्री जी)
योग प्रचार सभा सहारनपुर

भजन प्रस्तुति

मम्मे माया याद की जिसने दिया उपदेश।
सद्‌गुरु चन्द्रमोहन मिले चरणों गहूँ महेश।।

प्रार्थना

संकट काटन विघ्नहरण, गौरी पुत्र गणेश।
सभी देव दर पर रहें, सेवा करें महेश।।
गुरु चरण ह्रदय बसो, काटो विघ्न क्लेश।
शरण तेरी में आ गया, सेवा करूँ महेश।।
सरस्वती कण्ठ वासा करो, दो बल बुद्धि ज्ञान।
अमृतवाणी बोलना, धरूँ तुम्हारा ध्यान।।
राम नाम सुमिरता, तुम्हीं हो जगदाधार।
बेड़ा पार मझधार में, कर दो प्रभुजी पार।।
सर्व व्यापक तू ही है, तू सब में जगदाधार।
ज्ञान हमको दीजिए, तेरी करूँ पुकार।।

गणेश वन्दना

जग के दाता हे विधाता, गणपति तेरा ध्यान करूँ।
सिद्धि सदन ये बदन तेरा है गजानन कहलाते हो।

चतुर्भुजी ये रूप तेरा है, मांग सिन्दूर लगाते हो।
एकदन्त मुख सून्ड है गज की इसी रूप का ध्यान करूँ
जग के दाता हे विधाता.........

सिर पर तेरे मुकुट विराजे, मुसा सवारी आन करे।
ऋद्धि–सिद्धि के दाता हो, घर–घर में भण्डार भरे।
निर्धन आया तेरी शरण में, द्वार तेरे पर अर्ज करूँ
जग के दाता हे विधाता.........

गुणियों में तो गुणी तुम्हीं हो, विद्या में मशहूर तुम्हीं।
हाथ जोड़ अरदास करूँ मैं, तेरी शरण में आया हूँ।
घट–घट में तुम ही व्यापक हो, हरदम तेरे चरण गहूँ।
जग के दाता हे विधाता..............

सरस्वती माता रहें पास में, सभी देव अरदास करें।
निर्धन को तू धन से भर कर, ज्ञानी और विद्वान करें।
धूप दीप लिए करूँ आरती, ले लड्डू का भोग धरूँ।
जग के दाता हे विधाता.............

महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का दिव्य लीला चरित्र

घटा छाई अन्धघोर की, हुआ हाहाकार।
श्री रामलाल जी ने आनकर किया योग प्रचार।।
करा योग प्रचार थे लाखों प्राणी तारे।
शक्ति देकर महाप्रभु ने कितने प्राणी तार दिये।
जो भी आया शरण आपकी, कर उनका उद्धार गये।
दर्शन करके महाप्रभु जी का जग से सब ही पार गये।।

महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने अत्यन्त प्रसन्न भाव में भरकर महात्मा जी को अपनी अनेक लीलाओं को ध्यान में दिखलाया। चैत्र मास की रामनवमी को अमृतसर में महाप्रभुजी के पिता श्री गण्डाराम के घर जन्म हुआ है सभी देवतागण हर्षित होकर आकाश से पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। सैंकड़ों लोग बधाई देने आ रहे हैं। शिशु स्वरूप में प्रकट हुए श्री महाप्रभुजी के मुखमण्डल पर अलौकिक तेज व्याप्त हो रहा है। पिता श्री गण्डाराम जी ने बच्चे की राशि का ज्ञान प्राप्त किया और शीघ्र ही यह जान लिया कि उनके बच्चे में योग के सभी लक्षण विद्यमान हैं।

पाँच वर्ष के श्री महाप्रभुजी मदरसा में पढ़ने के लिए जाने लगे यह देखकर माता–पिता आनन्द से भर जाते हैं। दिव्य बालक की विलक्षण बुद्धि को देखकर विद्यालय के सभी अध्यापक अचम्भित हो रहे हैं।

फिर श्री महाप्रभु जी ने एक दिन महात्मा जी को अपने पन्द्रह वर्ष की आयु के दिव्य दर्शन कराये। पन्द्रह वर्ष की आयु में महाप्रभुजी के मुखमण्डल पर यौगिक तेज है सिर पर लम्बी जटायें है। महात्माजी इस रूप का दर्शन करके अति प्रसन्न हैं वे योग सीखने के लिए उनकी शरण में हैं।

'प्रभु' जन्म लीला का दर्शन

श्री रामलाल ने जन्म लिया था, पाप निवारण आये थे।
भक्तों ही का कष्ट मिटाकर, नारायण कहलाये थे।।
चैत्र महीना रामनवमी को अमृतसर में जन्म लिया।
आनन्द छाया भवन में भारी, माता को हैरान किया।।
देवता गाजे-बाजे के संग, फूल बरसाते आये थे।
भक्तों ही का कष्ट मिटाकर..................
आनन्द छाया भवन के अन्दर, होने लगी बधाई जी।
चर्चा सुन प्रभु रामलाल की, भीड़ देखने आई थी।।
शब्द करें जब योगेश्वर जी, सुन कर सब घबराते थे।
भक्तों ही का कष्ट मिटाकर..................
गंडाराम जी के पुत्र कुँअर थे, भागवन्ती उनकी माई थी।
राशि देखी पिता ने इनकी, रेखा योग की पायी थी।।
समझ लिया था मात पिता ने, लक्ष्य योग का पाये थे।
भक्तों ही का कष्ट मिटाकर..................
पाँच साल के योगेश्वर जब, पढ़न मदरसा जाते थे।
शिक्षा देते थे योग की, अध्यापक चकराते थे।।
लीला करते रामलाल प्रभु, सबके मन को भाये थे।
भक्तों ही का कष्ट मिटाकर..................
पन्द्रह साल की उम्र हुई जब, सूरत बड़ी अचम्भी थी
मुख पर तेज योग का चमके, सिर पै जटा कुछ लम्बी थी।
अमीरानन्द जी शरण उन्हीं की योग सीखने आये थे।
भक्तों ही का कष्ट मिटाकर..................

बाल लीला का दर्शन

एक रोज गुरुकृपा के फलस्वरूप श्री महाप्रभुजी महात्मा जी को ध्यान में अपनी बाल लीलाएँ दिखलाते हैं। रात्रि का समय है माता भागवन्ती 'प्रभु' को सुलाना चाहती हैं किन्तु

वे माता की पकड़ाई में नहीं आते और पूरे कमरे में खूब रोल मचाते हैं। माता जब बहुत परेशान हो गई तो उन्होंने जबरदस्ती 'श्री महाप्रभुजी' को अपनी गोद में लेकर अपने साथ पलंग पर लिटा दिया। 'महाप्रभुजी' अपनी योग लीला फैला रहे हैं। उनकी लीलाओं का भेद कोई नहीं जान सकता। उनकी योग माया के प्रभाव से माता भागवन्ती जी को पलंग पर लेटते ही गहरी नींद ने घेर लिया। आधी रात का समय हो गया था घर के सभी सदस्य गहरी नींद में सोये पड़े थे। तभी वहाँ हिमालय से भगवान सदाशिव पधारे। दोनों महापुरुष मिल कर काफी देर तक बातें करते रहे। मात्र चार वर्ष के प्रभु श्री रामलाल जी महाराज भगवान सदाशिव जी का दर्शन कर अपने नेत्रों में प्रेम के आँसू भर लाये। उनके पावन चरणों का वह बारम्बार ध्यान करने लगे। गुरुचरणों का दर्शन पाकर चार वर्ष के महाप्रभुजी का मन अत्यन्त आह्लाद से भर गया। भगवान सदाशिव के अन्तर्धान का समय जानकर श्री महाप्रभु जी अपनी योगमाया समेटने लगे। योग माया का प्रभाव तिरोहित होते ही उन दोनों की बातें सुनकर तुरन्त माता भागवन्ती जाग उठी किन्तु वहाँ कोई नहीं था, भगवान सदाशिव उनके जगते ही अन्तर्धान हो गये। माता जी अत्यन्त भयभीत हो गई बार–बार सोचने लगी यहाँ तो कोई नहीं मेरे लाला से कौन बातें कर रहा था ? उन्होंने अपने लाला (प्रभु श्री रामलाल जी महाराज) की ओर देखा तो श्री महाप्रभु जी अपने शिशु रूप में गहरी नींद में सोये पड़े थे यह देखकर माता पुत्र प्रेम में अत्यन्त भयभीत हो गई। मुख से बोल नहीं निकलता था। सोचने लगी दरवाजा बन्द है फिर यहाँ आधी रात में कौन आया होगा ? श्री महाप्रभु जी ने अपनी माता जी को और अधिक भयभीत करने के लिए अपनी आँखों को बिल्कुल बन्द कर लिया और गहरी नींद का बहाना करके सो गये। भय से कम्पित माताजी जी अपने लाला को जगाने की पूरी कोशिश कर रहीं हैं बार–बार लाला–लाला पुकार रही हैं किन्तु जगा न सकीं। अन्त में अत्यन्त भय करती हुई सोचने लगीं अवश्य मेरे लाल को आधीरात पर किसी भूत–प्रेत ने आकर सताया है। महात्मा जी इस दृश्य को देखकर भक्ति से भर जाते हैं और प्रभु बाल लीला को अपने शब्दों में गा उठते हैं–

अजब दिखाते लीला प्रभुजी, पार किसी ने न पाया रे।
ऋषि मुनि बतलाये गये बिना गुरु नहीं पाया रे।।
बाल लीला करते थे प्रभुजी, भिन्न–भिन्न रूप दिखाते थे
एक रोज की बात 'प्रभु', कमरे में रोल मचाते थे
परेशान होकर माता ने, बच्चे को पलंग पर लिटा दिया
महाप्रभु जी रामलाल ने, माता का भ्रम मिटा दिया
माता लोट गई पलंग पर, निंद्रा ने उसे सताया रे
अजब दिखाते लीला..............................
आधी रात का समय हुआ था, आराम सभी जन करते थे,

शिवशम्भू तो खड़े पास में, बात परस्पर करते थे
ध्यान किया था गुरु चरणों का, नमन 'गुरु' को करते थे
चार साल की उम्र प्रभु की, आँसू प्रेम के भरते थे
दोनों को नहीं देख सका कोई, ऐसा खेल रचाया रे
अजब दिखाते लीला.................................

आँख खुली थी जब माता की, माता तो घबराय गयी।
उठ बैठी झट पलंग छोड़, काया पर जर्दी छाय गयी।
आधी रात का समय हुआ, नही मुख से बोल निकलता था
बात समझ नहीं आयी थी, नहीं भय से श्वाँस निकलता था
दरवाजा भी खुला नहीं फिर, कौन यहाँ पर आया रे ?
उठते देखा जब माता को, शिवजी अन्तर्धान हुये
महाप्रभु श्री रामलाल जी, आँख मीच सुनसान हुये
आन सताया है बच्चे को, भूत के मन में ज्ञान हुये
अमीरानन्द को देख ध्यान में, अपना ध्यान बताया रे।
अजब दिखाते लीला.................................

(क्रमशः)

लभंते सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिबच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपा सार्दितः।
कदाचिदपि पर्यटंछशविषाण मासादयेत्,
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्।।

—भर्तृहरि नीति शतक

कदाचित् कोई युक्तिवान व्यक्ति, किसी तरकीब से, रेत में से भी तेल निकाल ले, यह सम्भव हो सकता है, मृगतृष्णा से प्यासे व्यक्ति की प्यास बुझाना भी किसी तरह सम्भव हो सकता है, बहुत खोजने पर शायद खरगोश के भी सींग मिल जायें, परन्तु हठ पर अड़े हुए मूर्ख व्यक्ति के चित्त को, कोई भी व्यक्ति वश में नहीं कर सकता।

✲✲✲

निर्मल प्रेम मुझे दे दो.......

—राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)

क्यों कठोर मर्यादाओं में
मुझको बाँध रहे हो
निर्मल प्रेम मुझे दे दो
क्यों अपनी ठान रहे हो

तुम चाहो वह बात न हो
यह बड़ी असम्भव बात
जिन पर कृपा तुम्हारी
वो कर सकें भजन दिन-रात

मेरा चित्त न सतोगुणी
क्यों इसमें झाँक रहे हो ? निर्मल ....

जब से मुझे भजन पर
अपने, हो आया अभिमान
खाये बहुत थपेड़े फिर भी
बना न वैसा ध्यान

इतने पर भी पूर्ण मेरे
करते सब काम रहे हो। निर्मल..........

विषय त्याग, योग, ध्यान
के दल-दल में क्यों जायें
तेरे प्रेम में दो आँसू
बस आँखों में भर आएं

छिपकर बैठ गये हो
क्यों न मेरी जान रहे हो ? निर्मल......

जन्म-जन्म के पाप कर्म
हैं हमनें स्वयं रचाये
जो करते निःस्वार्थ कर्म
वो तुमको अतिशय भाये।

उन्हें प्रीति देकर अपनी
हरते अज्ञान रहे हो
निर्मल प्रेम मुझे दे दो
क्यों अपनी ठान रहे हो।

❊❊❊

सामूहिक पूजा में अनुशासन की आवश्यकता

—डा० रुद्रदत्त चतुर्वेदी (गोरखपुर)

उपासना का अर्थ है भगवान अथवा देवता के समीप बैठना। यह अपनी आत्मिक उन्नति और उपकार के लिए की जाती है अत: यह सरल सहज प्राथमिक साधन है जिससे साधक आगे बढ़ता है। जब साधन ही त्रुटिपूर्ण हो तो साध्य की प्राप्ति कैसे संभव है ? बिना आदर केवल स्वार्थ हेतु मंदिरों में न जायें। मूर्ति स्पर्श तथा पूजा उपदान स्पर्श वर्जित है। विधान है—जिसकी पूजा कर रहे हों (भक्तजन) उससे एक हाथ यानी डेढ़ फीट या अधिक दूर रहें। टहल–टहल कर और जोर–जोर से पाठ दोषपूर्ण प्रक्रिया है। अपना महात्म्य प्रकट करने के लिए औरों की अपेक्षा अधिक जोर के स्वर में पाठ करना वर्जित है। इसे दर्दुर दोष कहते हैं। तीन सौ शब्दों तक का पाठ (चालीसा, स्त्रोत आदि) कंठस्थ (याद) होना चाहिए अन्यथा फल प्राप्त नहीं होता।

एक प्रगतिशील समाज के लिए आवश्यक है कि उसमें लचीलापन हो और सर्वगुणग्राह्यता की प्रवृत्ति हो। सनातन हिन्दू धर्म की यह विशेषता रही है कि उसने सदैव अन्य धर्मों की विशेषताओं को बिना उहापोह के स्वीकार किया है। एक हजार वर्ष की पराधीनता और धार्मिक शिक्षा तथा पूजा पद्धति शिक्षण के अभाव में आज हिन्दू समुदाय पूजा उपासना की साधारण सम्यक् विधि से दूर होता जा रहा है और पूजा स्थल मनमानी रीति के केन्द्र बनते जा रहे हैं। कहीं किसी भी मंदिर में चले जाइये भीड़ और भेड़ चाल के दर्शन होंगे। शांति की अपेक्षा शोरगुल होगा और प्रतीत होगा कि हम धक्कम–मुक्का के साथ किसी मंदिर या आश्रम में नहीं बल्कि सब्जी मंडी में उपस्थित हैं।

इस समस्त प्रक्रिया के दो पक्ष हैं : पहला अर्चक (पुजारी पक्ष), इसमें तीर्थस्थलों के पुजारी भी शामिल हैं और दूसरा पक्ष है : पूजक या भक्त। चूंकि इस लेख का उद्देश्य किसी विशेष उपासना पद्धति की विवेचना या मीमांसा नहीं है बल्कि सामान्य जन की सामूहिक उपासना अर्थात् मंदिरों में प्रतिदिन या दिन विशेष के दिन पूजा तक ही केन्द्रित है। अत: अव्यवस्था के कारण और निवारण इस लेख की केन्द्रीय विषय वस्तु (सेण्ट्रल थीम) रहेंगे।

प्रत्येक प्राणी की मनोवृत्ति सुखमय केन्द्रित होने के कारण वह शीघ्र सुख प्राप्ति और दु:ख दूर करने की लालसा रखता है तथा सुख को अविच्छिन्न रूप से भोगना चाहता है।

सुख दो प्रकार के होते हैं—इन्द्रिय जन्य और आध्यात्मिक अत: आराधना दोनों ही के

लिए आवश्यक है। मन की गति प्रकृत्या अधोमुखी होने के कारण आवश्यक है कि उपासना स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़े। जिस प्रकार कागज का नक्शा (मैप) स्वयं में न समुद्र है न पर्वत परन्तु मार्ग दर्शन का काम करता है उसी प्रकार मूर्ति पूजा, स्त्रोत और मंत्रादि बहिर्मुखता से अन्तर्मुखता की ओर अग्रसर होने के साधन हैं। फिर सामान्य व्यक्ति जीवन में संतुलन और समायोजन बनाये रखने के लिए भी तो पूजा करता है।

उपासना का मनोवैज्ञानिक उद्देश्य व्यक्ति को असामान्य होने से बचाना भी है और मनोविज्ञान की भाषा में पूजा मनोरचना या रक्षायुक्तियों (डिफेन्स मैकेनिज्म) का काम करती है। अतः जीव का अपरिहार्य भाग है क्योंकि हम दैनिक जीवन में देखते हैं कि जब कोई व्यक्ति दुःखी या परेशान होता है तो उस क्षण में उसे भगवान ही याद आते हैं।

इसके अतिरिक्त मंदिरों आश्रमों आदि में दिवस विशेष के दिन एकत्र होने से समाज में संवादशीलता, सहयोग और सौहार्द बढ़ता है तथा व्यक्ति सामाजिक समस्याओं से भी अवगत होते हैं। जिस प्रकार भौतिक अथवा समष्टिगत वस्तुओं के सुसंचालन और व्यवस्था के लिए कुछ नियम निर्धारित रहते हैं, उसी प्रकार आध्यात्मिक मार्ग की निर्बाध गतिशीलता बनाये रखने के लिए भी कुछ नियम या विधान बनाये गये हैं। उनका पालन लौकिक और पारलौकिक दृष्टि से श्रेयस्कर है क्योंकि जिस प्रकार अंगूर, चावल, गुड़ आदि के सड़ने से मद्य बनता है उसी प्रकार धर्म में विकार आने से धर्म अहितकारी बन जाता है–ऐसा आचार्य कनकनन्दी जी का मत है।

आइए अब चलते हैं हिन्दू मंदिरों और आश्रमों में। यदि हम किसी हनुमान जी के मंदिर में पहुँचे तो पायेंगे कि वहाँ हर व्यक्ति जोर–जोर से हनुमान स्तुति (चालीसा, बजरंग बाण आदि) कर रहा होगा। ऐसा इसलिए कि दूसरे के सस्वर पाठ से अन्य व्यक्ति के सहज पाठ (स्मूथ रीडिंग) में बाधा उत्पन्न होती है अतः उसकी आवाज दबाने के लिए और अधिक उच्च स्वर में पाठ करता है और इस प्रकार मंदिर अथवा आश्रम का भक्तिमय वातावरण–कोलाहल पूर्ण बन जाता है। मंदिर में देव अर्चक (पुजारी) होने के उपरान्त भी हम देवता पर फूल, प्रसाद और पैसे फेंककर अपनी अतिशय भक्ति और अचेतन समीपता का प्रदर्शन करते हैं। अतः अपना कल्याण चाहने वाले को दूसरों की पूजा में विघ्न उपस्थित नहीं करना चाहिए। दूसरों के धर्म कार्य में उपस्थित किया गया **विघ्न माता-पिता, पत्नी-पुत्र, दास-दासी, वाहनादि का क्षय करता है।**

हम सभी देखते हैं कि देवी मंदिरों की वर्ष भर उपेक्षा रहती है परन्तु नवरात्रों में देवी माँ पर जल चढ़ाने और यदि वहां तुलसी, पुष्पादि वृक्ष हैं तो उनकी मुसीबत आ जाती है। रोको–टोको तो नास्तिक और अभक्त आदि की उपाधियां पाओ। धर्म ग्रंथ स्पष्ट लिखते

है कि जिस प्रकार मछली पालक और मुर्गी–पालक इनके शत्रु होते हैं उसी प्रकार धर्मान्ध भी धार्मिक जनों के शत्रु होते हैं (संदर्भ : पूजा से मोक्ष पुण्य तथा पाप भी–आचार्य कनकनन्दी)।

यहां यह भी जान लेना आवश्यक है कि सहजभाव से पत्थर के देव पूजन से सुख शांति संभव है परन्तु **दिखावा पूजन से क्लेश ही बढ़ता है**। कुछ लोग यह नहीं जानते कि जिस प्रकार मृग मरीचिका से प्यास नहीं बुझती ठीक वैसे ही आडम्बर पूर्ण धर्म से दुःख नहीं मिटता।

बिना आदर केवल स्वार्थ हेतु मंदिरों और आश्रमों में न जायें। मूर्ति स्पर्श तथा पूजा उपादान और चित्र स्पर्श वर्जित है। विधान है–जिसकी पूजा कर रहे हों (भक्तजन) उससे एक हाथ यानी डेढ़ फीट या अधिक दूर रहें। टहल–टहल कर और जोर–जोर से पाठ करना दोषपूर्ण प्रक्रिया है। अपना महात्म्य प्रकट करने के लिए औरों की अपेक्षा अधिक जोर के स्वर में पाठ करना वर्जित है। इसे 'दर्दुर दोष' कहते हैं। तीन सौ शब्दों तक का पाठ (चालीसा, स्त्रोत आदि) कंठस्थ (याद) होना चाहिए अन्यथा फल प्राप्त नहीं होता।

उपासना का अर्थ है भगवान अथवा देवता के समीप बैठना। यह अपनी आत्मिक उन्नति और उपकार के लिए की जाती है अतः यह सरल सहज प्राथमिक साधन है जिससे साधक आगे बढ़ता है। जब साधन ही त्रुटिपूर्ण हो तो साध्य की प्राप्ति कैसे होगी।

✲✲✲

आतुरे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रु संकटे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।।

–चाणक्य

रोगी होने पर, दुःख विपत्ति पड़ने पर, अकाल पड़ने पर, शत्रु से संकट उपस्थित होने पर, किसी मुकदमे आदि में फँस जाने पर गवाह या सहायक के रूप में राज–सभा में और मृत्यु होने पर जो श्मशान तक साथ देता है, वही बन्धु है।

✲✲✲

साधक में त्रिगुण प्रभाव

लेखक – **कृष्ण कुमार पाण्डेय**, गोरखपुर

सांख्यशास्त्र के प्रणेता महर्षि कपिल ने प्रकृति के बारे में बताते हुए कहा कि–सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है। इसी प्रकृति और पुरुष के संयोग से सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है। प्रकृति और पुरुष उस अंधे और लंगड़े की तरह है, जिसमें दोनों मिलकर अपने रास्ते को तय करते हैं। लंगड़ा द्रष्टा है। प्रकृति वस्तुतः भोग्या और पुरुष भोक्ता है।

साधन में त्रिगुण अर्थात् सत्व, रज एवं तम की प्रकृति भिन्न–भिन्न प्रकार की है। भिन्न प्रकृति होने से कार्य भी अपने गुण और धर्म के अनुसार करते हैं। प्रकृति के ये तीनों गुण सुखात्मक, क्रियात्मक एवं दुःखात्मक हैं। सत्वगुण प्रकाशक, रजोगुण प्रवर्त्तक और तमोगुण नियामक है। गीता में भगवान ने कहा–

सत्वरजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।।

अर्थात् हे अर्जुन–सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण इस प्रकृति से ही उत्पन्न हुए अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बाँधते हैं। व्यक्ति इनके वश में होकर कार्य करता है। इस त्रिगुण की योगेश्वर भगवान कृष्ण ने अलग–अलग विवेचना करते हुए बताया कि–

तत्र सत्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुख संगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ।।

अर्थात् हे निष्पाप उन तीनों गुणों में प्रकाश करने वाला निर्विकार सत्वगुण तो निर्मल होने के कारण सुख की आसक्ति से और ज्ञान की आसक्ति से बाँधता है। पुनः रजोगुण के बारे में बताते हैं कि–

रजोरागात्मकं विद्धितृष्णासंगसमुद्भवम्।
तान्निबधान्ति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम्।।

हे कौन्तेय राग रूप रजोगुण को कामना और आसक्ति से उत्पन्न हुआ जान, वह इस जीवात्मा को उसके कर्मों और फलों की आसक्ति से बांधता है।

इसी प्रकार तमोगुण–

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्नि बध्नाति भारत।।

अर्थात् हे अर्जुन तमो गुण सभी देहाभिमानियों को मोहने वाला, अज्ञान से उत्पन्न हुआ जानो। वह इस जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा बांधता है।

ये तीनों गुण क्रमशः एक दूसरे को अपने प्रभाव से दबाते हैं। कारण एक गुण दूसरे

गुण को दबाकर अपना अभ्युदय करते रहते हैं। योगेश्वर कृष्ण के अनुसार–

रजस्तमश्चाभिभूय सत्वं भवति भारत।
रजः सत्वं तमश्चैव तमः सत्वं रजस्तथा।।

अर्थात् रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्व गुण बढ़ता है। रजोगुण और सतोगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है, इसी प्रकार तमोगुण और सत्वगुण को दबाकर रजोगुण बढ़ता है। साधक अपने योगमार्ग में जैसे–जैसे अग्रसर होता है, ये त्रिगुण भी छाया की तरह उसे घेरे रहते हैं। इसीलिए जीवन में गुरुदेव की उपादेयता है। गुरुदेव साधक की प्रवृत्ति उसके साधन की योग्यता एवं पात्रता के अनुसार सहायता करते हैं। सद्गुरुदेव भगवान इसीलिए अपने उपदेशों में सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों की विवेचना करते रहते थे। सद्गुरुदेव भगवान साधक को जीवन की प्रारम्भिक दिनचर्या में दातुन करने आदि के बारे में भी बताते थे। निश्चित रूप से वे बातें तथ्यात्मक और अनुभव पर सिद्ध होती थी। साधक कितना ग्रहण करता है यह उसकी क्रियाशीलता पर निर्भर करता है।

त्रिगुण से साधक ही नहीं सामान्य व्यक्ति भी प्रभावित रहता है। साधारण व्यक्ति जिसके जीवन में गुरुदेव का आगमन नहीं है। वह अपने अनुसार जीवन जीता है। किन्तु सद्गुरुदेव सम्पन्न व्यक्ति के जीवन का भार उसके अनुसार चलता है। वस्तुतः गुणों (सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण) का प्रभाव पुरुष के जीवन में आदि से लेकर अन्त तक रहता है। मृत्युकाल पर्यन्त ये त्रिगुण पुरुष को बांधते हैं। इसीलिए जिस त्रिगुण की प्रवृत्ति में पुरुष अपने शरीर को छोड़ता है, उसी के अनुसार वह पुनर्जन्म को प्राप्त करता है। त्रिगुण परस्पर विरुद्ध होकर भी एक साथ मिलकर कार्य करते हैं। ये गुण दीपक में तेल, बत्ती एवं अग्नि के साथ मिलकर घट–पट आदि का प्रकाश करते हैं। इसी तथ्य को योगेश्वर श्री कृष्ण ने बताया कि–

उर्ध्वगच्छन्ति सत्वस्था मध्येतिष्ठान्ति राजसाः।
जघन्य गुण वृत्तिस्था अधोगच्छन्ति तामसाः।।

अर्थात् सत्वगुण में स्थित पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकों में जाता है। रजोगुण में स्थित राजस पुरुष मध्य में अर्थात् मनुष्य लोक में ही रहते हैं। तमोगुण के लोग निंद्रा, प्रमाद और आलस्य में स्थित अधोगति अर्थात् कीट, पतंग एवं पशु आदि नीच योनियों को प्राप्त होते हैं। जबकि मनुष्य योनि के अतिरिक्त सब भोगयोनियाँ हैं। जहाँ सुकृत कर्म नहीं होते है।

इसीलिए साधक को चाहिए कि इस स्थूल शरीर की उत्पत्ति के कारण रूप तीनों गुणों का उल्लंघन करके जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्था तथा सब प्रकार के दुखों से मुक्त होकर परमात्मा को प्राप्त करना चाहिए। व्यक्ति इन त्रिगुण के प्रभाव को देखते हुए, साधन में लगाना चाहिए। व्यक्ति को ऐसे सद्ग्रंथों का अध्ययन गुरुप्रदत्त मंत्र का जप, गुरुदेव का ध्यान नित्य निरंतर करते रहना चाहिए। जिससे जीवन सत्वगुण सम्पन्न बना रहे। गुरुदेव की ही वाणी में कि–"इतनी साधना करो कि अपने मृत्यु को जान लो"।

❋ ❋ ❋

शरीर और आत्मा

प्रेषक–दृष्टिकेतु सिंह पुण्डीर (अलीगढ़)

शरीर के भाग :-

१. स्थूल शरीर :- यह पाँच तत्वों क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर से बना है। यह शरीर बाहर का कार्य करता है।

२. सूक्ष्म शरीर :- यह शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श के अणुओं और जर्रात से बना है। यह शरीर सोचने और विचारने का कार्य करता है।

३. कारण शरीर :- यह पाँच तत्वों के बीच रूप प्रमाण हं, लं, रं, बं, यं से बना है। इस से शांति प्रकट होती है। इसी शरीर में आत्मा का निवास रहता है।

ऋषियों ने शब्द देह कहा है क्योंकि तीनों देहों की बनावट अणुओं के मेल से होती है। तीनों के गुण और कर्म और स्वभाव इन अणुओं के अनुसार होते हैं। शरीर तत्वों के मेल से बना है।

आत्मा

जाहिर की आँख से न तमाशा करे कोई।
हो देखना तो दीदये दिला वा करे कोई।।

आत्मा संस्कृत भाषा में आत् + मन से बना है। आत् का अर्थ है हिलना, डोलना और मन का अर्थ है सोचना। जब आत्मा में हिलाव, डुलाव है, सोच विचार है, शान्ति है तो वह ऐसे भिन्न भावों को रखती हुई वह एक और अव्यय नहीं बल्कि अणुओं से बनी है। मुरक्कब है।

महाराज जनक ने महर्षि याज्ञवलक्य से पूछा, "महात्मन ! बतलाइये यह व्यक्ति किस ज्योति वाला है ? किस ज्योति से काम लेता है ? देखता है ? और कार्य चलाता है ?" याज्ञवलक्य ने कहा कि यह तो बच्चों जैसा प्रश्न है। हर व्यक्ति जानता है कि व्यक्ति सूर्य की रोशनी से देखता है और उसी से कार्य चलाता है। जनक ने का, "और जब सूर्य न हो तब ?" ऋषि ने कहा, तब वह चन्द्रमा की रोशनी से देखता है और अपना कार्य चलाता है।" जनक ने पूछा, "और जब चांदनी भी न हो तब ?" याज्ञवलक्य ने कहा, "तब वह अग्नि के प्रकाश से देखता है, उस से अपना कार्य चलता है।" जनक ने पूछा, "जब अग्नि भी न हो तब ?" ऋषि ने कहा, "तब वह वाणी के प्रभाव से देखता है, उससे अपना कार्य चलाता है।" रात्रि हो गई, सूर्य अस्त हो गया। चन्द्रमा अभी नहीं निकला। कोई दीपक

नहीं। पूर्ण अंधकार का साम्राज्य है और यात्री खो गया है एक विशाल जंगल में, तब वह आवाज देकर पूछता है– "कोई है ? मुझे मार्ग बताओ।" और दूसरा खड़ा व्यक्ति कहता है– "यहाँ चले आओ यात्री ! जहाँ मैं बुलाता हूँ" यात्री ध्वनि का सहारा लेकर वहाँ पहुँच जाता है। तब वाणी ही उसकी ज्योति है। उसी से वह कार्य चलाता है। तब जनक ने पूछा, "और जब वाणी भी न हो महाराज, तब ?" याज्ञवलक्य ने कहा, "तब आत्मा ही उस व्यक्ति की ज्योति है। उसी से वह अपना कार्य चलता है।"

आत्मा क्या है ?

यह जो जीता जागता, विज्ञान से भरपूर, प्राणों में संचार करता हुआ, हृदय के अंदर ज्योति बनकर बैठा हुआ पुरुष है– यही आत्मा है। यह आत्मा कितना छोटा है ? वेद भगवान के शब्दों में, "जीवात्मा नाम का एक जीता जागता पदार्थ है जो बाल की नौंक से भी छोटा है।"

श्वेताश्वेतोपनिषद् का ऋषि कहता है–

"बाल के अनुभाग को सौ भागों में विभक्त कर दिया जाय और फिर उन सौ भागों में से एक के सौ भाग कर दिये जायें तो उस भाग से भी छोटा– बहुत छोटा है यह आत्मा। इसका छोटापन वर्णनातीत है। उसकी कल्पना ही की जा सकती है, इतना छोटा है यह आत्मा"।

❋❋❋

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एकोऽनुभुंक्ते सुकृतमेक एवय दुष्कृतम्।।

–मनु स्मृति

प्राणी अकेला पैदा होता है, अकेला ही मरता है, पाप और पुण्य का फल भी वह अकेला ही भोगता है। जन्म–मरण और पाप–पुण्य में एक प्राणी, दूसरे प्राणी का सहायक या भागीदार नहीं होता।

❋❋❋

पृथ्वी पर पारस 'सद्गुरुदेव'

—**रचना शर्मा**, गंगापुरसिटी

परमपिता परमेश्वर ने इस अदभुत सृष्टि की रचना की है। बाह्य चक्षुओं से यदि हम इसका अवलोकन करें तो हमें यह सृष्टि अत्यन्त ही रमणीय व मनोरम प्रतीत होती है। प्रायः यह कहा जाता है कि इस सुन्दर पृथ्वी पर एक पारस पत्थर होता है। जिसके स्पर्श मात्र से लोहा भी सोना बन जाता है। मगर यदि हम सूक्ष्मतः इसका परीक्षण करें तो हमें ज्ञात होता है कि इस पृथ्वीलोक पर दो पारस हैं– एक तो वह अज अनादि अव्यापक परमसिद् आदि अनंत अखंड ज्योतिस्वरूप परमपिता परमेश्वर या सद्गुरुदेव और दूसरा ईश्वरीय प्रेमी भक्त या सद्शिष्य जो कि परमात्मा की भक्ति करने के लिए ही इस संसार में आते हैं और पुनः उसी परमतत्व में विलीन हो जाते हैं। सामान्यतः पारस के बारे में हमारी धारणा होती है कि पारस को छूने मात्र से लोहा भी सोना बन जाता है मगर सर्वसमर्थ सद्गुरुदेव रूपी पारस के सान्निध्य में हम जाते है और उनकी कृपादृष्टि अपने भक्त शिष्य पर बरसने लगती है तो वे उसे अपना ही प्रतिरूप (पारस सदृश) बना लेते हैं। ऐसे अनूठे व्यक्तित्व परमतत्व गुरुदेव की दयालुता, महानता का क्या कहना ? ऐसे महान व्यक्तित्व साधारण भेष में छिपे हुए अवतारी पुरुष हम जैसे सांसारिक जीवों का उद्धार करने के लिए अवतरित होते हैं। सद्गुरुदेव का इस पृथ्वी पर आने का एकमात्र उद्देश्य अपने ही अंशी जीवों को सद्मार्ग बताकर उन्हें अपने निज घर परमधाम तक पहुँचाने का है।

हमारी सबकी आत्मा उस परमात्मा का अंश है मगर हम अपने सच्चे स्वामी परमपिता से बिछुड़कर माया मोह के जाल में फंसे हैं। हम इस मन के अधीन होकर जो–जो कर्म करते हैं अच्छे भी करते हैं बुरे भी करते हैं, इस सबका नतीजा भुगतने के लिए पुनः पुनः जन्म लेना पड़ता है। यहाँ आकर हम जहाँ भी पैदा होते हैं जिस भी रूप में जन्म लेते हैं हमें दुःख ही दुःख मुसीबतें ही मुसीबतें भोगनी पड़ती हैं। किसी भी रूप में जन्म लेकर हम सुख प्राप्त नहीं कर सकते। अगर हमें मनुष्य के चोले में जन्म लेकर ही सुख शान्ति नहीं मिलती तो फिर हमारे लिए विचारणीय प्रश्न है कि क्या हम अन्य किसी रूप मे सुख प्राप्त कर सकते हैं ?

मगर इस संसार में जो परमात्मा के भक्त या अपने गुरुदेव के दीवाने हैं वो परमात्मा

की सच्ची भक्ति व गुरुदेव के बताए मार्ग का अनुसरण करके अत्यंत आनंद की अनुभूति करते हैं, उस परमात्मा के भक्तों का आनंद अद्भुत व इस सांसारिक जगत के सुखों से कहीं अधिक सुख प्रदान करने वाला होता है. चाहे कितनी ही मुसीबतों कितने ही कष्ट उन दीवाने भक्तों के जीवन में आए मगर वो तो अपनी अलग ही दुनिया में मस्त रहते हैं, सुख-दुःख उनके लिए समान रहते हैं. ईश्वरीय भक्त अपनी समस्त कामनाओं को त्यागकर परमात्मा के रंग में रंग जाता है तब उसका सूक्ष्म अलौकिक जगत में प्रवेश होता है और फिर वहीं से आरंभ होती है उस भक्त की ओर परमात्मा के मिलाप की अनूठी व अद्भुत कहानी।

जब साधक शिष्य अपने इष्ट अपने आराध्य के ध्यान में विभोर होता है तो उसे अत्यंत ही मनोरम व आनंदमय अनुभूति होती है कभी तो वह स्वयं को रूई की मानिंद हल्का महसूस करता है तथा जिस प्रकार पक्षी खुले आकाश में उन्मुक्त भाव से विचरण करते हैं ठीक उसी भाँति उसे आभासित होता है कि वह भी अपने सच्चे मित्र अपने सच्चे साथी परमपिता परमेश्वर से मिलने के लिए सूक्ष्म लोकों की यात्रा कर रहा है, कभी उसे लगता है कि वह अत्यंत रमणीक ऊँचे स्थल पहाड़ के बीच खड़ा है चारों तरफ खुशहाली है शीतल मंद सुगंध धारा प्रवाहित हो रही है। हमारी सारी इच्छाएँ वासनाएँ घास फूस बनी हुई हैं जिनका हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं है, इस प्रकार उस परमात्मा के भक्त को नित प्रतिदिन अनूठी व दिव्य अनुभूतियाँ होती हैं तथा वह प्रतिक्षण उस आध्यात्मिक रस का पान करता है. मगर जगत के सामने व्यवहारिक रूप से किसी के सामने अपने इस आनंद को प्रकट नहीं करता, उस आनंदमयी अनूठे दिव्य रस का पान करते हुए भी अपने आपको प्यासा ही दिखाता है। प्रतिदिन परमेश्वर का चिंतन करते रहने पर हमें बोध होता है कि हमारी उस परमेश्वर से मित्रता गाढ़ी होती जा रही है और फिर हमें आभासित होता है कि हमारे सारे सुख दुःख उस परमात्मा के साथ बँटने लगे हैं। सांसारिक जीवन में हम अपने समस्त सुख दुःखों को अपने घनिष्ट व्यक्ति के साथ बाँटते हैं मगर एक बार उस दिव्य पुरुष से मित्रता होने पर वो परमपिता हमारे सारे दुःखों को स्वयं ही धारण करने लगते हैं और पग-पग पर हमारी प्रार्थना सुनने हमारी सहायता करने को आतुर रहते हैं। ईश्वर हमारी समस्त समस्याओं का समाधान स्वयं ही बिना कुछ कहे कर देते हैं। हमें उनसे कुछ कहने और करने की आवश्यकता नहीं वो हमारी समस्त समस्याओं का समाधान स्वयं ही बिना कुछ कहे कर देते हैं। जिस प्रकार नाव पर सवार होने के पश्चात हम अपनी नौका को उस नाविक के भरोसे छोड़ देते हैं जब हम अपनी जीवन रूपी नैया को उस ईश्वर (गुरुदेव) रूपी नाविक को समर्पित कर देते हैं तो वो हमारी जीवन रूपी नैया के खेवनहार, रक्षक बन जाते हैं हमें उनसे कहने की कुछ आवश्यकता नहीं पड़ती, वो स्वयं ही हमारी

नैया को खेते है और हमें सांसारिक तूफानों झंझावतों से बचाते हुए अपने गन्तव्य अपने लक्ष्य तक पहुँचा देते हैं।

"जब तुझको अपना ही लिया,
दुनिया वालों से क्या डरना
पतवार मेरी जब तेरे हाथों में,
तूफानों की चिंता क्या करना
पार करो या भँवर में छोड़ो,
विश्वास पे तेरे बैठा हूँ तेरी मर्जी चाहे जो करना।"

जिस प्रकार समुद्र के पानी में दो चार मिनट के लिए लहर उठती है और वापिस जाकर समुद्र में समा जाती है जो लहर का संबंध समुद्र के साथ होता है वही संबंध ईश्वर के भक्तों का परमात्मा के साथ होता है। हमारे सद्गुरुदेव इस जीवन रूपी समुद्र की लहरें हैं जिस प्रकार हम समुद्र की लहरों को कोई वस्तु सौंप दे तो वे वापस जाकर समुद्र में समा जाती है। उसी प्रकार जब हम अपने आपको अपने गुरुदेव को समर्पित करते हुए उनकी भक्ति करते हैं तो उनकी भक्ति के द्वारा उनके प्यार के द्वारा वापस जाकर उस परमात्मा में समा जाते हैं।

अगर हम इस संसार पर नजर डालकर देखें तो हमें ज्ञात होता है कि दुनिया किस प्रकार स्वर्गों और बैकुण्ठों को प्राप्त करने के लिए यत्न करती है। कोई चाहता है हम समस्त सिद्धियों के स्वामी बन जाए, कोई चाहता है हमारा नाम इस समस्त जग में विख्यात हो। इसके लिए कठोर साधना करते हैं। घर बार छोड़कर जंगलों में पहाड़ों में छिपकर बैठे रहते हैं और कुछ प्रेमी भक्त जो कि इनसे थोड़े उच्च कोटि के हैं वे इन सिद्धियों या स्वर्गों बैकुण्ठों की कामना नहीं करते वे तो मुक्ति के पीछे दौड़ते फिरते हैं। वे जन्म मरण के दुःखों से छुटकारा पाना चाहते है। लेकिन जो ईश्वर के सच्चे भक्त हैं ईश्वर के प्यारे हैं जिनके अंदर उस परमतत्व को जानने की लालसा है, विरह है, उस परमात्मा के दर्शन की तीव्र तड़प है वे क्या परमात्मा से बैकुण्ठ स्वर्गादि लोकों का वैभव माँगते हैं ? वे क्या परमात्मा से प्रीति माँगते हैं ?

वो अनूठे दीवाने भक्त तो परमात्मा से स्वर्ग और बैकुण्ठ तो क्या माँगेंगे वो तो उनसे मुक्ति भी नहीं माँगते। उनके अन्दर तो अपने परमात्मा से आराध्य से मिलने की सच्ची ललक है। सच्चा प्रेम है। वो तो परमात्मा से परमात्मा को ही माँगते हैं। जब तक उन्हें अपने अन्दर परमात्मा के दर्शन नहीं हो जाते, उनके मन में कभी तृप्ति नहीं हो सकती। चाहे उन्हें समस्त सिद्धियाँ मिल जाए। स्वर्गीय आदि दिव्य लोकों का वैभव मिल जाए मगर

उन्हें जब तक अपने आराध्य का साक्षात्कार नहीं होता तब तक उनकी विरह तड़प कम नहीं होती।

हमें परमात्मा को ही माँगना चाहिए। उनसे मिलने की सच्ची तड़प अपने अंदर जागृत करनी चाहिए। जब तक उनसे मिलने का प्रेम हमारे अंदर जागृत नहीं होगा तब तक हम भक्ति में कामयाब नहीं हो सकते। जब हमें परमात्मा ही मिल जाएँगे तो अन्य किसी की हमें क्या आवश्यकता। जब भण्डारी ही मिल जाए तो उसके पास भण्डार की क्या कमी हो सकती है। जिसे सृष्टि का सृजनहार मिल जाए उसे रचना या रचना के पदार्थों की क्या कमी हो सकती है।

हम दुनिया के जीव चाहते हैं कि परमात्मा हमारे हृदय में आकर बैठ जाए मगर हम कभी यह नहीं सोचते कि परमात्मा को कहाँ बिठाना चाहते हैं। जिस हृदय के अंदर परमात्मा को बिठाना चाहते हैं, वह तो गैरों के मोह या प्यार में फँसा हुआ है। यह गैर कौन है ? जो कुछ भी हम इन आँखों से देखते हैं, यह सब गैर है ? इन सबके मोह और प्यार में फँसकर हम अपने वास्तविक साथी को भूल जाते हैं। व्यवहारिक जीवन में हमें दृष्टिगत होता है कि हमारा कोई घनिष्ठ मित्र या रिश्तेदार हमसे दूर चला जाए तो उसकी याद में हमारी आँखों से दिन रात अश्रुधारा बहती है मगर यही हम विचार करके देखें कि इस तरह क्या हम कभी अपने परमपिता से बिछुड़कर रोए हैं ? क्या हमने कभी उनका दिन-रात स्मरण चिन्तन किया है । ये दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकती। मन तो हमारा वही है चाहे उसे दुनिया के प्यार या मोह में फँसा ले या फिर अपने सच्चे मालिक से मिलने की तड़प अपने अंदर पैदा कर ले। उसे परमात्मा की भक्ति में लगा दो।

जिस प्रकार चन्दन के वृक्ष बहुत ही खुशबूदार होते हैं। इन पेड़ों की लकड़ी के अंदर बहुत ठण्डक होती है। जहरीले सर्पों को इनकी खुशबू अच्छी लगती है, इसलिए वे चंदन के वृक्ष के चारों ओर लिपटे रहते हैं। हम यही चंदन की लकड़ी प्राप्त करना चाहे तो हमें पहले उन जहरीले सर्पों से मुक्ति पानी होगी। उन्हें हटाना पड़ेगा। उन सर्प रूपी रुकावट को दूर करके हम अपनी इच्छानुसार लकड़ी प्राप्त कर लेते है। इसी प्रकार हमारी इस मानवी देह के अंदर एक सर्प लिपटा बैठा है वह सर्प है हमारा मन । जो कि हमें कभी कामी बना देता है, कभी क्रोधी बना देता है तथा कभी लोभ, मोह अहंकार में फँसा देता है। जब तक यह मन हमारे ऊपर हावी रहता है ,तब तक हम परमात्मा की सच्ची भक्ति नहीं कर सकते। अगर हम इस देह के अंदर बैठकर परमात्मा की भक्ति करना चाहे तो हमें सद्गुरुदेव की शरणागति लेनी पड़ती है। हमारे गुरुदेव इस भयंकर मन रूपी सर्प को खत्म करने के लिए गुरु मंत्र रूपी तलवार हमें प्रदान करते है। इस गुरुमंत्र रूपी तलवार

के द्वारा हम अपने मन को वश में कर लेते हैं। इसके पश्चात् प्रारंभ होती है हमारी आध्यात्मिक आंतरिक अर्न्तयात्रा। जो आंतरिक खजाने परमात्मा ने हमारे इस सुंदर शरीर के अन्दर रखे हैं। जिन्हें हम अब तक पहचान नहीं पाए। सद्गुरुदेव द्वारा बताए गए मंत्र द्वारा, अभ्यास द्वारा नित चिन्तन मनन करने से हमें प्राप्त होते है। और फिर हम उस परमतत्व परमेश्वर की गुरु अमृतरूपी आनंदमयी मदिरा का पान करते है। जिसे प्राप्त कर लेने के पश्चात् हमारी समस्त कामनाएं इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। हमारी अन्य किसी भी वस्तु या पदार्थ में लालसा नहीं रहती।

जब गुरुमंत्र हमारे मन में रम जाता है चलते फिरते, उठते बैठते, जागते सोते प्रतिक्षण उसका मनन करते है। तो हमारे जितने भी पाप कर्म हैं, बुरे कर्म हैं वो नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार सूखी घास लाकर कितना ही बड़ा ढेर क्यों न लगा लें आग की एक चिन्गारी पल भर में सारी घास को जलाकर राख कर देता है। उसी प्रकार गुरुमंत्र की कमाई हमारे सब कर्मों का हिसाब किताब लेखा जोखा पूरा कर देती है।

वह जो परमतत्त्व है, वह बहुत बड़ा है। वह सचखण्ड का अधिकारी है। समस्त जगत का संचालक नियामक व कर्ता है। और हम दुनिया के जीव बहुत नीचे हैं। हमारा यह शरीर गंदगी का ढेर है। न हमारे अंदर कोई गुण है न कोई अच्छाई। हम जितने नीचे हैं, परमात्मा उतना ऊँचा है। उस अलौकिक पुरुष से मिले बिना हम इस देह से छुटकारा नहीं पा सकते, मगर इतने नीचे होने के उपरान्त हम परमात्मा से मिल सकते हैं। उनसे मिलकर एकाकर हो सकते हैं। अगर हमें सच्चे सद्गुरु की शरण मिल जाए और वे हमें अपना लें, गुरुमंत्र रूपी नाव के द्वारा हम भव से पार हो सकते है। परमात्मा के भक्त रूपी पारस उस परमात्मा रूपी पारस में मिलकर स्वयं भी उनका रूप बन सकते हैं, अगर हम अटूट श्रद्धा विश्वास व लगन से अपने गुरुदेव के बताए मार्ग का अनुसरण करें।

हमें अपने जीवन का उद्देश्य समझना चाहिए। इस सुंदर शरीर की सार्थकता तभी है जब हम नश्वर संसार में रहते हुए भी माया मोह में लिप्त न हों। अपने कर्मों को करते हुए उस परमतत्व ईश्वर का निरन्तर स्मरण ध्यान करें। जिस प्रकार सिर पर घड़ा रखकर चलती हुए स्त्री अपने साथ चलती सखी से वार्तालाप करती है मगर उसका समस्त ध्यान अपने कलश पर रहता है कि कहीं यह हमारे हाथ से छूट न जाए उसी प्रकार हमें भी अपने कर्मों को करते हुए निरंतर अपने लक्ष्य पर ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि हमारे जीवन का वास्तविक लक्ष्य उस परमात्मा को प्राप्त करना है जिसे प्राप्त कर लेने के पश्चात् ही हम जन्म मरण के चक्रव्यूह से मुक्ति पा सकते हैं।

✲✲✲

श्रीमद्भगवद् गीता का उद्देश्य

डा० जयनारायण (आजमगढ़)

मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार तीन प्रकार की शक्तियों से चिन्हित होता है। विचार शक्ति–प्राधान्य होने से कोई व्यक्ति तर्क–वितर्क वाला होता है। भावना शक्ति की प्रधानता होने से व्यक्ति प्यार का रास्ता अपनाता है। क्रियाशक्ति की बहुलता होने से व्यक्ति सदैव कर्म की राह पसन्द करता है। इस प्रकार गीता प्रथम अध्याय को छोड़कर ज्ञान योग, कर्मयोग एवं भक्ति योग में समाहित है। ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों शक्तियाँ ईश्वराभिमुखी हो जाती है। तो व्यक्ति ज्ञान योगी, भक्तियोगी, कर्मयोगी हो जाता है।

गीता का प्रथम अध्याय एक प्रकार से भूमिका है। अर्जुन युद्धक्षेत्र में सम्मुख खड़ी कौरव सेना के कतिपय स्वजनों को देखकर मोहग्रस्त हो जाता है। इस मोहग्रस्तता से छुटकारा पाने के लिये योगयोगेश्वर श्री कृष्ण भगवान अर्जुन को बहुतेरे ढंग से मोह नाश करने की सीख देते हैं। यही मोह नाश के उपाय गीता के सभी १८ अध्यायों में प्रसंगानुसार परिलक्षित होते हैं। अतः गीता का वास्तविक प्रयोजन मोह–नाश ही है।

मोह नाश गीता का मूल स्वर है। मोह–नाश रूपी मूल स्वर को आश्रित कर के विभिन्न योगों की चर्चा गीता में की गयी है। योगेश्वर कृष्ण भगवान अर्जुन के माध्यम से मनुष्य के मोहग्रस्त दुर्बलता को उजागर करते है। मोहग्रस्त व्यक्ति की बुद्धि सम्मोहित हो जाती है और स्मृति लोप हो जाती है। मन की शान्ति लुप्त हो जाती है। अशान्त व्यक्ति व्याकुल हो कर घर बार छोड़कर क्षणिक वैराग्य में चला जाता है। गीता मनुष्य को संसार में रहना सिखाती है। मनुष्य अपनी मानसिक कमजोरियों को अनुभव कर मन को ईश्वराभिमुख कर लेता है और आभ्यान्तरिक शान्ति पाने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति को आन्तरिक दुर्बलताओं को दूर करने के लिये एक प्रकार का सतत युद्ध करना पड़ता है। "युद्धस्व" का टेक योगेश्वर श्री कृष्ण भगवान पग–पग पर अपने उपदेश में अर्जुन को सुनाते हैं ताकि अर्जुन स्वधर्म को पूरा करने के लिये प्रेरित रहे और आभ्यान्तरिक शान्ति प्राप्त कर मोह–त्याग करे। गीता के माध्यम से योगेश्वर श्री कृष्ण भगवान ने व्यामोह से आक्रान्त अर्जुन से अन्त में पूछा–

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनंजय।। (१८/७२)

"हे अच्युत ! आप की कृपा से मेरा मोह नष्ट हुआ है, और मुझे स्मृति प्राप्त हुई है। अब मैं संशयरहित हो गया हूँ और मेरी बुद्धि स्थिर हो गयी है। मैं आप की आज्ञा का पालन करूँगा।"

इसका तात्पर्य यह है कि मोह जब चित्त में घुसता है, तो स्मृति लोप होने से भले और बुरे, उचित और अनुचित, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का भेद ज्ञान में नहीं रह जाते हैं। योगेश्वर श्री कृष्ण भगवान गीता के माध्यम से अर्जुन के मोह को दूर कर उसके असली स्वरुप में प्रतिष्ठित करते हैं कि अर्जुन जान ले कि उसका मुख्य कर्त्तव्य क्या है ?

❊❊❊

गुरुआज्ञा न उल्लंघनियाँ

प्रेषक--**केशवदेव उपाध्याय**, वाराणसी

श्री सिद्धयोग सँवाई आश्रम से सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक गुरुभाई-बहन हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री रामाश्रय जी से अवश्य ही परिचित होंगे। श्री रामाश्रय जी के सँवाई धाम आने की घटना स्वयं में एक अलौकिक एवं अद्भुत प्रसंग है। प्रसंग सन् उन्नीस सौ सन्तावन ईस्वी का है। उन दिनों श्री रामाश्रय जी, रेलवे विभाग के फोरमैन पद पर आगरा में कार्यरत श्री आर० बी० कन्चन के यहाँ घरेलू कारिन्दे की हैसियत से कार्यरत थे। अपने भरण पोषण के लिये श्री कंचन परिवार की सेवा करना ही इनकी जिन्दगी का मुख्य कार्य था। इनका वहाँ का संस्कार पूरा हुआ एवं अनाथनाथ श्री गुरुदेव भगवान की कृपा दृष्टि इन पर पड़ी। पारिवारिक सेवा का कार्यक्रम समाप्त कर यह रात्रि के समय सोये हुये थे। रात्रि के अन्तिम समय लगभग तीन बजे इन्हें एक स्वप्न दिखायी दिया। स्वप्न में इन्होंने आराध्यदेव का अस्पष्ट दर्शन हुआ और यह आवाज साफ एवं स्पष्ट सुनायी दी कि लल्ला ! तुम आश्रम आ जाओ। दूसरी बार भी स्पष्ट आवाज सुनायी दी, "लल्ला तुम आश्रम आ जाओ," इनके मन में उत्सुकता जगी एवं यह विचार करने लगे कि हमें आवाज लगाने वाले कौन हैं एवं वह हमें किस आश्रम पर बुला रहे हैं। दो-तीन दिन ये इसी उधेड़ बुन में थे परन्तु कुछ रहस्य इनके समझ में नहीं आया। चौथे दिन श्री रामाश्रय जी ने अपने साहब श्री आर० बी० कंचन जी से प्रश्न किया, "साहब ! यहाँ कोई आश्रम है क्या ? उन्होंने उत्तर दिया कि क्या बात है ? तुम्हें कोई कष्ट है क्या ? आश्रम की बात तुम्हारे मन में कैसे आ गयी। उस समय तो ये सभी बातें छिपा लिये एवं श्री कंचन जी से बोले, नहीं साहब, ऐसी कोई बात नहीं है।

लगभग चार-पाँच दिन बीतने के बाद उन्हें वही स्वप्न दिखा एवं वही गगनभेदी आवाज फिर सुनायी दी कि लल्ला ! तुम आश्रम आ जाओ। इस बार आवाज सुनने के बाद आदरणीय भाई श्री रामाश्रय जी काफी सोच विचार करने लगे। साथ ही कुछ उदास भी रहने लगे। इनके चेहरे की उदासी का आंकलन कर इनके साहब श्री कंचन जी ने कहा, "तुम कोई बात अवश्य छिपा रहे हो।" उनका यह प्रश्न सुनकर आदरणीय भाई श्री रामाश्रय जी ने अपने अन्दर छिपे रहस्य को खोल दिया एवं कहा, "साहब ! मैं दो बार यह स्वप्न देख चुका कि कोई हमें आज्ञा दे रहा है कि आश्रम चले आओ।" मैं यही बात सोचकर चिन्ता मग्न हूँ कि यह आश्रम कौन सा है एवं मुझे आज्ञा देने वाले कौन हैं ? उन्होंने अपने साहब से निवेदन किया कि साहब आप ही पता करके बतला दीजिये कि यहाँ आश्रम कौन सा है ?

सिद्धों का संकल्प कभी अधूरा नहीं रहता। हमारे आराध्यदेव का क्या कहना ! वह तो सिद्धों के ईश्वर सिद्धेश्वर हैं। श्री कंचन साहब को उसी दिन, श्री सिद्ध गुफा सँवाई आश्रम

का पता लग गया एवं अपनी ड्यूटी से लौटने के बाद उन्होंने श्री रामाश्रय जी को श्री सिद्धगुफा सँवाई आश्रम का पता बतला दिया। साथ ही यह हिदायत भी दे दी कि आश्रम के विषय में तुम्हें कोई जानकारी तो है नहीं, यह सभी स्वप्न सत्य नहीं होते। अतः तुम पहले पत्र लिखकर आश्रम की छानबीन कर लो। अपने साहब की बात पर विश्वास करते हुये उन्होंने (श्री रामाश्रय जी ने) आश्रम के नाम एक पत्र लिखकर भेज दिया। अप्रत्याशित रूप से पत्र का उत्तर भी अल्पावधि में मिल गया। पत्र में, जिसका जवाब आराध्यदेव जी ने अपने कर कमलों से दिया था, लिखा था, "लल्ला रामाश्रय ! तुमने स्वप्न में जो कुछ देखा है अक्षरशः सत्य है। पत्र पाते ही तुम आश्रम के लिये प्रस्थान कर दो।" पत्र पाते ही आदरणीय भाई जी को आध्यात्मिक आनन्द का अनुभव हुआ एवं अपने साहब से राहखर्च लेकर सँवाई धाम को चल दिये। योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा की पावन स्थली में प्रवेश करते ही इनकी मुलाकात आदरणीय ज्ञानी बाबा जी से हुयी। अभी ये उचित अभिवादन के बाद आराध्यदेव जी के सम्बन्ध में बातचीत कर रहे थे। तभी अनाथनाथ ने आवाज लगायी, "अरे ज्ञानी, उसे लेकर मेरे पास आओ।" आदरणीय ब्रह्मचारी ज्ञानी बाबा जी, श्री रामाश्रय जी को साथ लेकर श्री चरणों में पहुँच गये। आराध्यदेव जी के चरण कमलों में भाई रामाश्रय जी ने साष्टाँग प्रणाम किया। आशीर्वाद देने के बाद श्री मुख ने कहा, "लल्ला रामाश्रय ! तुम आ गये न आश्रम। श्री प्रभु जी का यही आश्रम है एवं तुम्हें यहीं रहना है। तब से अब तक ये इसी योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा सँवाई धाम पर निवास करते हैं। एवं आराध्यदेव की आज्ञा शिरोधार्य कर अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार सेवा किया करते हैं।

श्री सिद्धयोग पथ के विद्यार्थी (साधक) का मुख्य अथवा सर्वोच्च लक्ष्य अपने श्री गुरुदेव की आज्ञा का यथा सम्भव पालन करना ही होना चाहिए। यद्यपि यह कहना जितना आसान है, पालन करना उससे कई गुना कठिन कार्य है। इस पथ का साधक अपने गुरुदेव श्री की आज्ञा पालन कर अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। साधक को इस रहस्य का अनुभव हो या न हो परन्तु उसके श्री गुरुदेव उसकी उत्तरोत्तर प्रगति का सदैव ध्यान रखते हैं। कभी-कभी अपने शिष्यों को समझाने की नीयत से यह रहस्य स्पष्ट उजागर भी कर दिया करते हैं। उपरोक्त विषयवस्तु को बिल्कुल स्पष्टतया समझाने के लिये आराध्यदेव के चरण कमलों में घटित एक कृपा प्रसंग का विवरण निम्न प्रकार है।

सन अस्सी के दशक की बात है। उन दिनों कानपुर मण्डल का यौगिक प्रचार कार्यक्रम श्री आराध्यदेव जी अपने विशेष कृपा पात्र शिष्य, हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री सुरेशचन्द शर्मा जी द्वारा कराया करते थे। आदरणीय श्री शर्मा दम्पत्ति की श्री गुरुदेव भगवान के चरण कमलों में श्रद्धा प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। उस वर्ष का आराध्यदेव जी महाराज का कानपुर मण्डल का कार्यक्रम आदरणीय भाई श्री शर्मा जी के मेक रावर्टगंज स्थित आवास पर सम्पादित हो रहा था। मानव स्वभाव है कि वह गल्ती करता

है या यों कहा जाय कि आराध्यदेव जी के सामने मन के आन्तरिक भाव स्वयं बाहरी सतह पर आ जाते हैं। कुछ ऐसा ही बानक बना एवं आराध्यदेव जी ने अपने मुखारबिन्द से कहा कि हमारे बच्चे हमारी आज्ञाओं का पालन अक्षरशः करते ही नहीं, यदि करें तो श्री प्रभु जी उन्हें निहाल कर दें। यह वह समय था जब श्री गुरुदेव भगवान प्रातःकालीन श्री दादागुरुजी महाराज की आरती पूजन, श्री भागवत गीता पाठ एवं प्रवचन आदि का कार्य पूर्ण कर अपने प्रवास वाले कमरे की चारपायी पर विराजमान होने के तत्काल बाद अपने मुखारबिन्द से कहे थे। आदरणीय श्रीमती विमला शर्मा (धर्मपत्नी आदरणीय गुरुभाई श्री सुरेशचन्द शर्मा जी) ने प्रसंग को आगे बढ़ाते हुये कहा कि महाराज जी आपके गृहस्थी बच्चों की ध्यान स्थिति तो देखने से काफी अच्छी दिखाई देती है, परन्तु आपके सँवाई आश्रम के ब्रह्मचारियों की साधना स्थिति मेरी समझ से जितनी अच्छी होनी चाहिये थी, उतनी अच्छी नहीं लगती।

कानपुर के इस योग प्रचार कार्यक्रम में आराध्यदेव के साथ परम आदरणीय सुश्री उमा शर्मा, आदरणीय ज्ञानी बाबा जी, आदरणीय श्री रामाश्रय जी, आदरणीय श्री वाजपेयी जी एवं कुछ अन्य साधक समुदाय श्री सँवाई आश्रम से कानपुर पधारे थे। उस समय जिस समय आदरणीय बहन श्रीमती विमला शर्मा ने उपरोक्त बातें कहीं, आदरणीय भाई श्री रामाश्रय जी उसी गुरुभवन में पाल्थी मारकर बैठे थे। आराध्यदेव जी ने स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा कि, लल्ली ! ऐसी बात नहीं है। श्री रामाश्रय भाई की तरफ इशारा करते हुये उन्होंने कहा कि इस अभ्यासी को देखो। यह केवल आश्रम की सेवा करता है एवं श्री प्रभु ही की ऐसी कृपा है कि इस समय इसे खेचरी मुद्रा लगी हुयी है। आराध्यदेव जी ने आदरणीय श्री रामाश्रय जी का मुख खोलवाकर खेचरी मुद्रा लगने की स्थित का उपस्थित सभी लोगों को दर्शन कराया।

तदुपरान्त कमरे में उपस्थित सभी साधकों को अपने मुखारविन्दु से सम्बोधित करते हुये आराध्यदेव जी ने समझाया कि बात सिर्फ एक ही है, और वह है गुरुदेव की आज्ञाओं का पालन करना। सद्शिष्य को पूर्ण मनोयोग से आज्ञा पालन का प्रयत्न करना चाहिये। किसी शिष्य का परम कल्याण किस प्रकार करना है, यह कार्य गुरुदेव का है। सद्शिष्य को तो वही करना चाहिए, जो करने का आदेश मिला है। श्री मुख ने आगे कहा कि हमारी आज्ञा मानकर हमारा कोई शिष्य आश्रम के भोजनालय में खाना बनाने का कार्य कर रहा है, कोई आश्रम पर खेती का कार्य कर रहा है, कोई गौशाला में सेवा कर रहा है या आश्रम के अन्यान्य कार्य कर रहा है तो उसका वह कार्य ही उसकी साधना है। उसको भी अन्त समय में वही फल मिलेगा जो उच्चकोटि के साधक या ध्यानाभ्यासी को मिलेगा।

अतः कहने का तात्पर्य यह है कि हम सभी गुरुभाई बहनों को आराध्यदेव की आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करने का पूरा-पूरा प्रयास करना चाहिये, इसी में हम सबका परम कल्याण निहित है।

❊❊❊

दृढ़ संकल्प से ही लक्ष्य की प्राप्ति

लेखक—**राजेश कुमार सिंह**, रोहुआ, बलिया (उ०प्र०)

पवित्र गंगा अपने लक्ष्य सिन्धु की ओर तब तक बढ़ती रहती है जब तक वह उसमें मिलकर एक न हो जाए। गति पथ पर यदि एक छोटा सा पत्थर आ गया तो धारा उछलकर उसेपार कर आगे की ओर बढ़ती है, और यदि धारा प्रवाह के सामने चट्टान आ जाए तो उसे घेरकर चारों तरफ से पुनः आगे बढ़ जाती है। और यदि पहाड़ आ जाए तो उसके किनारे से जगह बनाती हुई अग्रसर हो जाती है। पथ में आने वाली रुकावटों से लड़ते हुए, हटाते हुए अन्ततोगत्वा गंगा सिन्धु में मिल महान हो जाती है।

'जख्म खाकर मुस्कराये, तीर खाकर हँस पड़े,
आफतों की गोद में खेला, करें और खुश रहे।
—सवा मथरानी

बाधा साधक के व्यक्तित्व को कमजोर नहीं अपितु मजबूत बनाती है, धर्म साधना में संकल्पकृत साधक बढ़ता ही रहता है। उसके लिए बाधा जीवन गति में रुकावट के लिए नहीं परोक्ष रूप से सहायता करने के लिए आती है। वह मुसीबतों में मुस्कराता है तो आपदाओं में धर्म से काम लेता है। ऐसे साधक के लिए एक ही व्रत होता है 'जय लाभ करना या मौत को गले लगाना, बीच का रास्ता उसके लिए नहीं होता' 'वह पाऊँगा सिद्धि अवश्य चाहे आज या सौ वर्ष बाद' को ध्यान में रखकर सद्साहस, अटल विश्वास, अदम्य उत्साह के साथ साधना समर में आजीवन सम्पूर्ण समर्पण के साथ शाश्वत सत्ता ब्रह्म धाम की ओर विद्युत गति से अग्रसर होता रहता है।

साधना समर का पथ है, साहसी साधक का पथ है, पौरुष का पथ है, कायर और बुजदिलों का नहीं। ऋषियों ने वीर भोग्या वसुन्धरा की संज्ञा दिया है, अर्थात् यह वीरों का पथ है। साधक का जीवन संग्रामपूर्ण जीवन है, उसे माया से हर वक्त जूझना पड़ता है। माया वेश बदलकर अनुकूल अवसर पाकर सम्पूर्ण शक्ति के साथ प्रहार कर अदृश्य हो जाती है। इसलिए माया रूपी दुश्मन से बचने के लिए साधक को अपने पास हर वक्त विवेक रूपी अस्त्र को छुपाकर रखना पड़ता है। साधकों का पथ काँटों से भरा पड़ा होता है, फूलों से नहीं। जब तक वह सिद्ध नहीं हो जाता, तप कर कुन्दन नहीं बन जाता तब तक उसे अंगारों पर चलना पड़ता है। साधना मार्ग महाकठिन मार्ग है, लेकिन मानव जीवन का लक्ष्य ही है सिद्धि लाभ करना, सद्गुरु धाम में पहुँचकर सद्गुरु की स्नेह छाया में बैठ उनका शाश्वत प्रेम प्राप्त करना। ऋषि कहते हैं कि—'जब तक माया पर अपना विजय

ध्वज न फहरा लेते तब तक हे साधक आध्यात्मिक मार्ग दुर्गम होने पर भी चैरवेति–चैरवेति।

साधक का मन संकल्प और विकल्प भावनाओं के वशीभूत तलों को स्पर्श करता आगे बढ़ता है। इन दो भावनाओं के वशीभूत साधक की गति सांप छछुन्दर की सी हो जाती है। इसलिए साधक को तीन स्तर में बांटा गया है–पहला पक्षीवत स्वभाव, दूसरा बंदर जैसा और तीसरा चीटी सा स्वभाव।

पक्षी को पके और लाल फल की लोलुपता भावाविष्ट कर देती है। फल पर पक्षी फल प्राप्ति हेतु चोंच से चोट करता है, परन्तु पक्षी के तीव्र प्रहार से पका फल भूमिगत हो जाता है, वह पक्षी को नसीब नहीं होता। उसी प्रकार साधक भी सत्संग आदि से ब्रह्मोपलब्धि की प्रेरणा से भावावेश में हो उठते हैं। वे जीवनदर्शन प्राप्ति हेतु साधना जगत में दौड तो पड़ते हैं परन्तु शीघ्र फल की प्राप्ति न होने पर निराश हो जाते है और आदर्श से हतोत्साहित हो विमुख हो जाते हैं और अपनी गति भोगाभिमुखी बना डालते हैं। साधना की दृढ़ दीवाल न होने से असफल साधक बाद में पश्चाताप का जीवन व्यतीत करते हैं।

दूसरे प्रकार के साधक बंदर के स्वभाव जैसे होते हैं। जिस प्रकार बंदर वृक्ष पर चढ़कर फल को तोड लेता है और मुख में रख भी लेता है लेकिन चचल स्वभाव के कारण डालों पर छलांग लगाता रहता है। मजबूत पकड न होने के कारण मुख में रखा फल गिर जाता है, वह फल पाकर भी फल के रसास्वादन से वंचित रह जाता है, उसी प्रकार साधक फलोपलब्धि के पश्चात् भी पकड़ कमजोर रहने के कारण फल भोगानंद से च्युत हो जाते हैं।

तीसरे स्तर के साधक जो चींटी के स्वभाव के होते हैं, भोजन के दाने को अपने मुंह में लेकर थिरकती फुदकती मंथर गति से अपने निवास स्थान पर चल पड़ती है। रास्ते की रुकावटों, बाधाओं और मुसीबतों से जूझती हुई अपने सुराख में पहुँचकर आनंद से उन दानों को खाती है, आनंदानुभूति से ओत–प्रोत हो सराबोर हो जाती हैं।

साधक चींटी की तरह दृढ़ संकल्पकृत हो अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। वे व्यवहारिक होते हैं, सैद्धान्तिक पंडित नहीं, वे कार्यकुशल तथा निपुण होते हैं, वे ब्रह्मज्ञ होते हैं वेदज्ञ नहीं। साधक अपने मनोबल का प्रयोगकर लक्ष्य बिन्दु की ओर बढ़ता जाता है। उसे उस राह का राही मिले या न मिले उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। विश्व कवि रवीन्द्र नाथ टैगोर के शब्दों में :–

"एकला चलो, एकला चलो रे, यदि तोर डाक
सुने केउ न आसे, तबे एकला चलो रे।"

बंगला में एक और कहावत है :–

'यदि जगतेर सबे चले जाए कांदिते कांदिते,
तुमि एकला बसे थाकिबो, निजे संकल्प साधिते।'

संकल्प शक्ति से साधक सिद्ध लाभ करता है। दुनिया रोती रहे पर संकल्पकृत साधक अपने संकल्प के साथ दृढ़ और अटल रहता है। साधक के सिद्धि लाभ में 'पार्वती का हठ, ध्रुव की दृढ़ प्रतिज्ञा और गोपी की भक्ति' समाहित होनी चाहिए; इससे सर्व सिद्धि लाभ होता है। इस धरती पर आये हैं तो कुछ पद-चिन्ह छोड़कर जाए :-

'कोई हंसकर मरा, कोई रोकर मरा,
मगर जिंदगी पाई उसने, जो कुछ होकर मरा।'

परिश्रम का फल मीठा होता है, दृढ़ संकल्प सफलता की कुंजी है, इससे आत्म विश्वास उत्पन्न होता है।

❊❊❊

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहोनातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत।।

–श्रीमद्भगवद् गीता

तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, द्रोहहीनता और अपने मान-सम्मान के अभिमान का अभाव-ये सब तो हे अर्जुन ! दैवी सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं।

हम इस संसार में खाली हाथ आते हैं और खाली हाथ ही जाते हैं, यह सभी जानते हैं, पर यह भौतिक स्थिति है। जन्म और मृत्यु के बीच की अवधि में हमारे हाथों में भौतिक पदार्थ आते रहते हैं, इसलिए खाली हाथ वाली हमारी धारणा सही मालूम होती है पर असल बात कुछ और ही है। वास्तव में न हम खाली हाथ आते हैं और न खाली हाथ जाते हैं। हमारे स्थूल शरीर वाले हाथ ही खाली होते हैं बाकी सूक्ष्म शरीर के सूक्ष्म हाथ तो हमारे द्वारा पूर्व जन्मों में अभुक्त कर्मों के फल से भरे हुए रहते हैं और जब इस जन्म में शरीर छोड़ते हैं तब भी हमारे सूक्ष्म शरीर के सूक्ष्म हाथ खाली नहीं होते, पिछले कर्मों में शेष बचे कर्म और इस जन्म में किए गये शुभाशुभ कर्म हमारे हाथों में होते हैं। जिनके हाथों में अच्छे कर्म होते हैं वे दैवी सम्पदा के स्वामी होते हैं।

❊❊❊

अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया तपः।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशः क्षमा धृति।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद् दुरासदम्।।

(वायु पुराण ५७/११७)

किसी भी प्राणी के साथ द्रोह न करना, लोभ से दूर रहना, इन्द्रियों को वश में रखना, प्राणिमात्र के प्रति दया का भाव रखना, स्वधर्म पालन के लिए कष्ट सहना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, सच बोलना, दुखियों से सहानुभूति रखना, अपराधी को क्षमा कर देना और कष्ट पड़ने पर धैर्य धारण करना–सनातन धर्म की जड़ यही है, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

✿ ✿ ✿

यत् क्रोधनो यजति यच्च दादाति नित्यं
यद् वा तपस्तपति यच्च जुह्योति तस्य।
प्राप्नोति नैव किमपही फलं हि लोके
मोघं फलं भवति तस्य हि कोपनस्य।।

(वामन पुराण ४३/८६)

क्रोधी मनुष्य जो कुछ भी भजन–पूजन करता है, जो कुछ नित्य प्रति दान करता है, जो कुछ तपश्चर्या करता है और जो कुछ भी हवन करता है, उसका इस लोक में उसे कोई फल नहीं मिलता, उस क्रोधी का सब कुछ किया–कराया व्यर्थ होता है।

✿ ✿ ✿

परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम्।
सुह्रदामतिशंका च त्रयो दोषाः क्षयावहाः।।

पराये हक छीँन लेना, पर स्त्री–संसर्ग और अपने हित–मित्रों से अत्यधिक सशंकित रहना–ये तीन दोष सर्वनाश करने वाले हैं।

✿ ✿ ✿

न तथा शीतल सलिलं न चन्दनरसो न शीतला छाया।
प्रह्लादयति च पुरुषं यथा मधुरभाषिणी वाणी।।

(भविष्य पुराण ब्राह्मपर्व ७३/४८)

ठंडा जल, चन्दन का रस अथवा ठंडी छाया भी मनुष्य के लिए उतनी आह्लाद जनक नहीं होती, जितनी कि मीठी वाणी।

✿ ✿ ✿

PRINTPOINT-0562-2262261

प्रधान कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

□□□□□□

अपि मानुषकं लब्ध्वा भवन्ति ज्ञानिनो न ये।
पशुतैव वरं तेषां प्रत्यवायाप्रवर्तनात्।।

अर्थात्–धर्म और अधर्म केवल मानव के लिए हैं। इतर जीवों में धर्म-अधर्म की बात नहीं है। मानव होकर भी अपने कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान न प्राप्त करे और यथेष्टाचरण करता रहे तो उसका पशु होना ही अच्छा था। क्योंकि पशुजन्म में पाप लगता ही नहीं।

प्रकाशक एवं मुद्रक :– विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसईकलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सँवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित।
सम्पादक–आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा